लघुजातकम्

श्रीमद्भट्टोत्पलकृतसंस्कृतटीकासहितम् ।

दैवज्ञवाचस्पति-श्रीवासुदेवकृत सम्पादितम्

प्रकाशक

सावित्री ठाकुर प्रकाशन

रथयात्रा, आन्ध्र-नाटी इमली, वाराणसी ।

।। श्री हरिः ।।

श्रीमद्वराहमिहिराचार्यविरचितं

लघुजातकम्

श्रीमद्भट्टोत्पलकृतसंस्कृतटीकासहितम्।

*

काशीस्थ-श्री काशी ज्योतिर्वित्समितिमन्त्रि-

दैवज्ञवाचस्पति - श्रीवासुदेवकृत

सविशेष-सोदाहरण-भाषाव्याख्यया च संभूष्य

सम्पादितम्

*

प्रकाशक :

सावित्री ठाकुर प्रकाशन

रथयात्रा, ब्रान्च नाटी इमली, वाराणसी

फोन { ३६०६८८ रथयात्रा
२१०५२७ नाटी इमली }

सन् १९९८ मूल्य : ३०)-

प्रकाशक -

सावित्री ठाकुर प्रकाशन

रथयात्रा, वाराणसी।

फोन - ३६०६८८

सन् १९९८

मूल्य : ३०)

मुद्रक-

सावित्री प्रिंटिंग प्रेस

घौसाबाद, वाराणसी।

फोन - ३४८८९४

प्राक्कथन

यह सर्वविदित है कि ज्योतिषग्रन्थ प्रणेता आचार्यों में वराहमिहिर का नाम प्रथम आता है। जिन्होंने ऋषियों के प्रणीत जातक ग्रन्थों का सारांश लेकर 'होराशास्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना की, उसको कुछ वृहत् देखकर अल्पमतिजनों को अल्पकाल और अल्पश्रम द्वारा समस्त जातक का तत्त्व समझ में आ जाय, इस बुद्धि से पूर्वरचित 'होराशास्त्र' का नाम बृहज्जातक तथा द्वितीय का लघुजातक नाम रखा-यह उनके प्रारम्भिक पद्यों से ही स्पष्ट है।

अनन्तर अल्प संस्कृतज्ञ तथा असंस्कृतभाषाविज्ञ ज्यौतिषशास्त्र प्रेमियों के हितार्थ अनेक ज्यौतिष ग्रन्थों के व्याख्याता एवं रचयिता त्रिस्कन्ध ज्यौतिषाचार्य विश्व-विख्यात हमारे पू० गुरुवर पण्डित श्री सीताराम झा जी ने उक्त दोनों ग्रन्थों की सोदाहरणोपपत्ति सरल संस्कृत तथा भाषा टीका लिखी जिसमें ज्यौतिष अध्ययन और अध्यापन करने वाले दोनों ही उपकृत हुए, जो सर्वविदित है।

फिर भी इस पर भट्टोत्पली संस्कृत टीका के साथ भाषा टीका करने की आवश्यकता इसलिए हुई कि-

'क्वचित् मुह्यति गर्वाद् वा प्रमादान्मतिमानपि'

इस न्याय से आचार्यवर्य वराहमिहिर ने नाभसयोगाध्याय में आकृतियोगान्तर्गत 'वज्र यवयोगों' के पूर्व मुनिप्रणीत लक्षण का विपरीत अर्थ से उसको असम्भव समझकर मुनियों पर ही सहसा आक्षेप कर दिये कि-

"पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः ।
चतुर्थे भवने सूर्याज्ज्ञसितौ भवतः कथम् ।।"

जिसको सर्वप्रथम गुरुवर्य ने ही पूर्वशास्त्रीय वचन का वास्तविक आकृति के अनुसार सङ्गत सयुक्तिक अर्थ लिखकर उसका सम्भव होना सिद्ध किया, और हमलोगों को समझाया एवं अन्य विज्ञजनों ने भी मिहिर के इस प्रमाद को समझा। इसी प्रकार भट्ट उत्पल की संस्कृत टीका में अनेक स्थलों में आचार्य के अभिमत के विरुद्ध व्याख्या देखने को मिली, जिसे गुरुचरणों के आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन के द्वारा प्रमादजनित अशुद्धियों का संशोधन कर उनके भावार्थ को सकल साधारणजनों के समक्ष उपस्थिंत कर देने के अभिप्राय से मैंने लघुजातक की हिन्दी व्याख्या कर देना आवश्यक समझा।

इसी (भट्टोत्पलीय टीका के) समय में एक बात नवीन यह देखने को मिली कि जिस बात को गुरुवर्य वर्षों से कहते चले आ रहे हैं कि- 'अदृष्टफल-(जन्मयात्रा-विवाहादि के शुभाशुभ फल) ज्ञानार्थ आर्ष-प्रणीत तुल्य राश्युदय द्वारा लग्नांशतुल्यभावों के साधन करना, न कि यवनप्रतिपादित अदृष्टफलार्थ में भी स्व-स्वदेशीय राश्युदय द्वारा लग्नादि भावों का साधन करना।' जिसकी पुष्टि नष्टजातकाध्याय में-

'एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः प्रष्टुर्वदेदुदयराशिवशेन तेषाम्॥'

इत्यादि की टीका में भट्टोत्पल ने लिखा है कि-भार्याभर्तृपुत्ररिपुषु नष्ट जातकं यदा पृच्छति तदा तद्भेभ्यस्तद्भावेभ्यः एवं पृच्छकस्य वदेत् ब्रूयात्। तमेवोदयराशिं परिकल्पयेदित्यर्थः। एतदुक्तं भवति यदि पुरुषः सवपत्नया नक्षत्रं पृच्छति तदा तात्कालिके लग्ने राशिषट्कं देयम्। अथ भ्रातुः पृच्छति तदा राशिद्वयं देयमथ पुत्रस्य पृच्छति तदा राशिचतुष्कं देयमथ शत्रोः पृच्छति तदा राशिपञ्चकं देयम्। एवं कृत्वा यद्भवति तदेवोदयराशिं प्रकल्प्य तद्गुणकारेण गुणयेत्।' इससे

निर्विवाद यह भी सिद्ध होता है कि उत्पल भट्ट के समय तक सब तुल्य राश्युदय से ही लग्नांश तुल्यभावों का साधन करते थे।

अतएव, ज्योतिषविद्या के मर्मज्ञ एवं प्रेमी विद्वानों का यह परम कर्त्तव्य है कि अदृष्टफल में आर्ष लग्नभाव का ही प्रयोग करें, तभी शास्त्र और धर्म की रक्षा सम्भव है।

इस विषय पर सविशेष विस्तृत वर्णन गुरुवर कृत 'लग्नविवेक' को देखें, जिसमें अदृष्टफलार्थ स्व-स्व-देशीय राश्युदय द्वारा लग्नसाधन करने में अनेक असङ्गतियाँ दिखलाई गई हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'लघुजातक' देखने में अवश्य लघु है किन्तु इस छोटे से ग्रन्थ के अध्ययन से साधारणजन भी जातक शास्त्र का तत्त्वज्ञ हो सकता है, इसमें अतिशयोक्ति नहीं। इसलिये मैंने भट्टोत्पलीय संस्कृत टीका के सहित मनोरमा हिन्दी भीषा टीका लिखकर प्रख्यात प्रकाशक फर्म-ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स बुक्सेलर, वाराणसी को प्रकाशनार्थ सादर समर्पण कर दिया है। आशा है विज्ञजन अवश्य उपकृत होंगे।

अन्त में सज्ञनवृन्द महानुभावों से यही प्रार्थना है कि प्रमादवश या यन्त्रालय के दोषवश संशोधनादि में यदी कहीं कुछ त्रुटि रह गई हो तो उसे सुधार कर मुझे सूचित करने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उसकी पूर्ति कर सकूँ।

'स्खलनं गच्छतः क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्ञनाः॥'

अक्षयतृतीया
वि. सं. २०२५

विनीत-
वासुदेव

लघुजातकस्य

विषयानुक्रमणिका

राशिप्रभेदाध्याय: ।। १ ।।

मङ्गलाचरण १
ग्रन्थप्रयोजन २
कालपुरुष के अङ्गविभाग २
राशियों के वर्ण ३
राशियों की पु. स्त्री-संज्ञा
दिशाज्ञान ४
मेषादि राशियों एवं
नवांशों के स्वामी ६
होरा-द्रेष्काण-द्वादशांश के स्वामी ८
त्रिंशांश के स्वामी १०
राशियों की द्विपदादि संज्ञा ११
राशिबल १२
लग्नादिभाव संज्ञा १२
केन्द्रादि संज्ञा १४
उपचय तथा वर्गोत्तम नवांश १४
राशियों के दिन-रात्रिबल-और
शीर्षोदय पृष्ठोदयत्व १५
ग्रहों के उच्च-नीच और
त्रिकोणस्थान १५
ग्रहों की षड्वर्ग संज्ञा १७

ग्रहभेदाध्याय: ।। २ ।।

ग्रहों के आत्मादि विभाग १८
दिशा-स्वामी तथा पाप
और शुभ-ग्रह १९
ग्रहों की पुं० स्त्री, संज्ञा
तथा वेदों के अधिप २०
ब्राह्मणादि वर्गों के अधिप २०
ग्रहों के स्थान बल २१
ग्रहों के दिग्बल, चेष्टावल २१
ग्रहों के कालबल २२
ग्रहों के नैसर्गिकबल २३
ग्रहों के स्थानबल २३
ग्रहों के दृष्टिस्थान २४

ग्रहमैत्रीविवेकाध्याय: ।। ३ ।।

मित्रामित्र में अन्य आचार्यों के मत २५
सत्योक्तनैसर्गिक मित्रामित्र २६
मित्रामित्र से पञ्चधामैत्री कथन २८

ग्रहस्वरूपाध्याय: ।। ४ ।।

सूर्यादि ग्रहों के स्वरूप ३०
प्रयोजन ३३

गर्भाधानाध्याय: ।। ५ ।।

आधानलग्न से संभोग ज्ञान ३३

आधान लग्न से दीप का ज्ञान ३४
गर्भाधान से जन्मकाल का विचार ३५
प्रसव सम्भव में विशेष ३५
गर्भाधानकालिक अशुभयोग ३५
आधान से १० मासों में गर्भ के रूप और फल ३७
आधान लग्न से गर्भ का ज्ञान ३८
गर्भ में पुत्र, कन्या का ज्ञान ३९
पुत्र, कन्या, यमल योग ३९
विशेष ४०

सूतिकाध्यायः ॥ ६ ॥

ग्रहों के सत्त्वादिगुण ४१
जातक के गुण-वर्णादि ४१
पिता के परोक्ष में जन्म ४२
परजात जन्मयोग ४३
सूतिका के गृह का द्वार ४४
सूतिकागृह का स्वरूप ४५
सूतिकागृह के मञ्जिल और बरामदा का ज्ञान ४६
सूतिका की शैय्या का ज्ञान ४६
नालवेष्टिताङ्ग ज्ञान ४७
सूतिका के आभूषण-धातु आदि का ज्ञान ४७
उपसूतिका ज्ञान ४८

अरिष्टाध्यायः ॥ ७ ॥

अरिष्टयोग ४९

अरिष्टभङ्गाध्यायः ॥ ८ ॥

अनेक प्रकार से अरिष्टभङ्ग विचार ५५

आयुर्दायाध्यायः ॥ ९ ॥

ग्रहायुर्दाय ५९
लग्नायुर्दाय ६१
वर्गोत्तमादि में विशेष ६१
ग्रहों की आयु में हानि ६२
चक्रोत्तरार्धस्थित ग्रहों की आयु में हानि ६३

दशान्तर्दशाध्यायः ॥ १० ॥

दशा प्रमाण ६४
दशाक्रम ६४
ग्रहों की दशा में शुभाशुभता ६५
लग्न की दशा में शुभाशुभता ६५
अन्तर्दशाधिकारी ६६
अन्तर्दशा साधन प्रकार ६७

अष्टकवर्गाध्यायः ॥ ११ ॥

सूर्यादि सप्तग्रहों के अष्टकवर्ग ६९
अष्टकवर्ग फलनिरूपण ७४

प्रकीर्णाध्यायः ॥ १२ ॥

अनफा, सुनफा, दुरुधरा, केमद्रुमयोग ७६
अनफादि योग के फल ७७
अनफादि योगकारक ग्रहों के फल ७८
सूर्य से विशेष योग ७९

द्विग्रहयोग	७६	उक्त ७ योगों के फल	१००
प्रव्रज्यायोग निरूपणम्	८१	गोल आदि ७ संख्या योग	१०१
सूर्यादिग्रहों की प्रव्रज्या	८२	**स्त्रीजातकाध्याय: ।।१४।।**	
प्रव्रज्या योग में विशेषता	८३	स्त्री के आकार तथा लक्षण	१०३
चरादि राशिफल	८४	पति सम्बन्धी विचार	१०४
दृष्टिफल	८५	अशुभयोग	१०४
भावफल	८६	ब्रह्मवादिनी योग	१०५
लग्नगत चन्द्रफल	८७	विशेष	१०५
सूर्यफल	८७	**निर्याणाध्याय: ।।१५।।**	
भावफल में न्यूनाधिकता	८८	मृत्युकारण ज्ञान	१०६
मेषादि नवांशजातफल	८६	मरणान्तर गतिस्थान ज्ञान	१०८
स्वगृह-मित्रगृहगत ग्रहों के फल	९०	मोक्षयोग	१०८
स्वोच्चगत ग्रहों के फल	९१	पूर्वजन्म वृत्तान्त	१०६
नीचगत ग्रहों के फल	९१	**नष्टजातकाध्याय: ।।१६।।**	
राजयोग	९२	लग्न और जन्मेष्ट जानने के लिए	
विषय कथन	९३	लग्न और ग्रहों के गुणकाङ्क	११०
नाभसयोगाध्याय: ।।१३।।		नक्षत्रज्ञान	१११
रज्जु-मुसल और नल नामक -		वर्ष ऋतु-मास आदि का ज्ञान	११३
आश्रय योग	९४	वर्ष-ऋतु-मास-पक्ष-	
सर्प और माला नामक दलयोग	९५	तिथि आनयन	११४
गदा आदि हलपर्यन्त ५ योग		दिन रात्रि तथा नक्षत्रानयन	११५
और फल	९६	इष्टकाल-लग्न-होरा-	
वज्र आदि दण्ड पर्यन्त ८ योग	९७	नवमांशानयन	११६
उक्त ८ योगों के फल	९८	प्रयोजन	११७
नौका आदि समुद्रपर्यन्त ७ योग	९९		

श्रीः

दैवज्ञवराहमिहिरविरचितम्

लघुजातकम्

संस्कृत-हिन्दीटीकाद्वयोपेतम्

टीकाकारकृतमङ्गलाचरण-

श्रीकृष्णजन्मदिवसे नत्वा कृष्णं च राधया सहितम् ।
लघुजातकस्य टीकां कुर्वे बोधाय बालानाम् ।।

ग्रन्थकारकृतमङ्गलाचरण-

यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि ।
कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति धाम्नां निधिः सूर्यः ।।१।।

सं० टी०-सतामयमाचारो यच्छास्त्रप्रारम्भेऽभिमतदेवतानमस्कारं कुर्वन्ति। तदयमावन्तिकाचार्यवराहमिहिरोऽर्कलब्धवरप्रसादो ज्योतिःशास्त्रसंग्रहं कृत्वा तदेव भीरूणां कृते संक्षिप्तगणितसंग्रहं कृत्वा होराशास्त्रम् संक्षिप्तं वक्ष्यमाणोऽशेषविघ्नोपशमायाभिमतसूर्यस्यादौ प्रणाममाह-स सूर्य आदित्यो जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। कथंभूतो धाम्नां निधिः। यस्योदयकालेऽस्तकाले च त्रिनेत्रो महेशः अञ्जलिं कुरुते, नमस्कारं करोतीत्यर्थः। कीदृशः सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलो देवचूडामणिनिघृष्टपादपद्म इत्यर्थः। यतः सर्वे देवा भगवतो नारायणस्य महादेवस्य, पादवन्दनं कुर्वन्ति। अपिशब्दाद्यस्य महादेवोऽपि अञ्जलिं करोति तस्य सेन्द्राः सुराः महर्षयश्च वन्दनं कुर्वन्ति।।१।।

जिनके उदय और अस्त के समय में देवताओं के भी प्रणम्य चरण-कमल वाले त्रिनेत्र (महादेव) भी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं, ऐसे परम तेजस्वी भगवान् सूर्य विद्यमान हैं।।१।।

ग्रन्थप्रयोजन-

होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि ।
यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं सम्प्रवक्ष्यामि ।।२।।

सं० टी०- होराशास्त्रं वक्ष्यामीत्याह। होराशास्त्रं जातकं मया वृत्तैर्नानाविधैर्निबद्धं रचितम्। किं कृत्वा शास्त्राण्यन्यानि निरीक्ष्य विलोक्य यत्तस्य सारमार्याभिः सम्प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामीत्यर्थः।।२।।

अनेक (गर्गादि मुनि प्रणीत) ग्रन्थों को सम्यक् देखकर मैं (वराहमिहिर) ने जो (विस्तार रूप में) होराशास्त्र (बृहज्जातक) रचा है, अब उसी के सारांश को बालकों के सुबोधार्थ आर्याछन्दों में कह रहा हूँ।।२।।

ग्रन्थप्रयोजन-

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिम् !
व्यंजयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ।।३।।

सं० टी०-शास्त्रोपयोगित्वमाह। प्राणिनां यदन्यजन्मनि शुभमशुभं वा कर्मार्जितं सञ्चितं तस्य कर्मणः प्राप्तिमेतच्छास्त्रं व्यंजयति प्रकटीकरोतीत्यर्थः। यस्मिन् काले शुभफलं यस्मिंश्चातोऽशुभफलमिति। स इव दीप इव। यथा दीपस्तमसि अन्धकारे द्रव्याणि विद्यमानानि व्यञ्जयति व्यवहारार्थम्।।३।।

प्राणी पूर्व जन्म में शुभ या अशुभ कर्म जो कुछ करता है, उस कर्म के परिणाम को यह जातकशास्त्र उसी प्रकार प्रकट कर देता है जैसे अन्धकार में पदार्थों को दीपक।।३।।

कालपुरुष के अङ्गविभाग-

शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यसंज्ञानि ।
ऊरू जानू जंघे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ।।४।।

कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले ।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सोपद्रवास्ते च ।।५।।

सं० टी०-कालपुरुषस्य मेषादिराशिपूर्वकमङ्गविभागमाह-अजाद्या राशयः कालस्याङ्गानि। राशय इति फलितोऽर्थः। अस्यं कालपुरुषस्य मेषः शिरः, वृषो मुखं, मिथुनं बाहू, कर्कटो हृदयं, सिंह उदरं, कन्या कटिः, तुला बस्तिर्नाभेरधोभागः, वृश्चिको गुह्यं; धनुरूरुयुग्म, मकरो जानुयुगलं, कुम्भो जङ्घे मीनश्चरणौ। प्रयोजनं-जन्मकाले पुरुषादिराशिषु शुभग्रहाक्रान्तेषु मनुष्याणां शीर्षादिकानामारोग्यता पापाक्रान्तेषु रोगित्वं संग्रामादिप्रविष्टस्य व्रणादिज्ञानम्।।४-५।।

मेषादिक १२ राशियाँ क्रम से कालपुरुष के मस्तकादि अङ्ग हैं। यथा-मेष-मस्तक, वृष-मुख, मिथुन-भुज, कर्क-हृदय, सिंह-पेट, कन्या-कटि, तुला-बस्ति (नाभि और लिंग के मध्य का अंग), वृश्चिक-लिंग, धनु-जंघा, मकर-घुटना, कुम्भ-घुटने का निचला भाग और मीन-पैर हैं। इस प्रकार जातक के भी अंग विभाग की कल्पना करनी चाहिये। जिस राशि में शुभ ग्रह हो उस राशि सम्बन्धी अंग को पुष्ट (सबल) और ज़िसमें पापग्रह हो उसको विकारयुक्त(निर्बल) समझना चाहिये।।४-५।।

राशियों के वर्ण-

अरुणासितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशंगौ ।
पिङ्गलकर्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासंख्यम् ।।६।।

सं० टी०- व्याधितस्य पीडाज्ञानाय तिलकादिचिह्नज्ञानाय च राशिवर्णज्ञानमाह। अजाद्या इत्यनुवर्तते। अजादयो राशयो वर्णयुता भवन्ति। तत्र मेषोऽरुण ईषद्रक्तः, वृषः श्वेतः, मिथुनं हरितः शुकाभः, कर्कट पाटलः ईषच्छ्वेतरक्तः सिंहः पाण्डुधूम्राभः ईषच्छुक्लः,

कन्याराशिर्विचित्रो नाना वर्णः, तुला सितेतरः कृष्णः, वृश्चिकः पिशङ्गः सुवर्णवर्णः, धन्वी पिङ्गल ईषत्कपिलः, मकरः, कर्बुरः शुक्लकपिलो मिश्रवर्णः, कुम्भो बभ्रुः कपिलः, मीना मलिनो मत्स्यवर्णः। एता राशीनां रुचयो वर्णाः। प्रयोजनं हृतनष्टादिषु द्रव्यवर्णज्ञानम्।।६।।

मेष का लाल, वृष-श्वेत, मिथुन-हरा, कर्क-पाटल (श्वेत-रक्तमिश्रित), सिंह-पाण्डु (श्वेत-पीत मिश्रित), कन्या-चित्र-विचित्र (अनेक वर्ण), तुला-काला, वृश्चिक सुवर्ण के समान, धनु-पिंगल (लाल-पीला मिश्रित), मकर-कबरा, कुम्भ-बभ्रुक (नकुल के समान) तथा मीन का वर्ण मलिन है।।६।।

विशेष- प्रयोजन यह है कि प्रश्नादिकाल में जो तत्काल राशि का वर्ण है, वही प्रश्नकर्ता के मनोगत पदार्थों का वर्ण जाने।

राशियों की पुं० स्त्री० संज्ञा, दिशाज्ञान-

पुंस्त्री-क्रूराऽक्रूरौ चर - स्थिर - द्विस्वभावसंज्ञाश्च।
अजवृषमिथुनकुलीराः पञ्चमनवमैः सहैन्द्र्याद्याः।।७।।

सं० टी०-राशिसंज्ञादिदिग्विभागं चाह। पुंस्त्रीति-मेषः पुमान्वृषा स्त्री, मिथुनं पुमान्, कर्कटः स्त्री एवं सर्वत्र। तथा क्रूराऽक्रूरौ मेषः क्रूर वृषोऽक्रूरः सौम्यः एवं सर्वत्र। चरस्थिरद्विस्वभावसंज्ञाश्चेति। ततो मेषश्चरः वृषः स्थिरः मिथुनं द्विस्वभावः एवं सर्वत्र कर्कटादिषु। प्रयोजनंपुरुषशीलज्ञानादि। अजवृषमिथुनकुलीरा इति। अजो मेषस्तस्य पञ्चमनवमाभ्यां सह पूर्वदिग्वृषस्य स्वपञ्चमनवमाभ्यां सह दक्षिणादिक्। मिथुनस्य स्वपञ्चमनवमाभ्यां सह पश्चिमादिक्। कुलीरः कर्कटस्तस्य पञ्चमनवमाभ्यां सहोत्तरादिक्। प्रयोजनं तु चोरादेर्दिग्गमनादिज्ञानम्।।७।

मेष आदि १२ राशि क्रम से पुरुष, स्त्री। क्रूर, सौम्य। चर, स्थिर द्विस्वभाव हैं। तथा मेष, वृष, मिथुन, कर्क—ये अपने-अपने पञ्चम, नवम राशि सहित क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं।।७।।

विशेष- इसका प्रयोजन चन्द्र और लग्न की एवं हृतनष्टादि वस्तुओं की दिशा जानने में होता है।

— राशियों के स्वामी-वर्णादि विशेष संज्ञा चक्र —

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन
स्वामी	मंगल	शुक्र	बुध	चंद्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मंगल	गुरु	शनि	शनि	गुरु
पु०स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
क्रूरसौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य	क्रूर	सौम्य
चरादि	चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व	चर	स्थिर	द्विस्व
वर्ण	लाल	श्वेत	हरा	पाटल	पाण्डु	विचि.	काला	स्वर्ण	पिंगल	कबरा	बभ्रु	मलिन
दिशादि	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर

मेषादि राशियों एवं नवांशों के स्वामी-

कुजशुक्रज्ञेन्द्वर्कज्ञशुक्रकुजजीवसौरियमगुरवः ।
मेषा नवांशकानामजमकरतुलाकुलीराद्याः ।।८।।

सं० टी०- राश्यंशाऽधिपानाह। कुजादयो मेषादीनामधिपाः। तत्र मेषस्य भौमोऽधिपतिः, वृषस्य शुक्रः, मिथुनस्य बुधः, कर्कस्य चन्द्रः, सिंहस्यादित्यः, कन्याया बुधः, तुलायाः शुक्रः, वृश्चिकस्य भौमः, धन्विनो जीवः, मकरस्य मन्दः, कुम्भस्य शनिः, मीनस्य बृहस्पतिः। तथा नवांशकानामजमकरतुलाकुलीराद्या इति येषां नवांशकानां ते अजमकरकुलीराद्याः। मेषस्य मेषाद्या नवांशा धन्व्यन्ताः, वृषस्य मकराद्या कन्यान्ताः, मिथुनस्य तुलाद्या मिथुनान्ताः, कर्कटस्य कर्कटाद्याः मीनान्ताः, मेषवत् सिंहधन्विनोः, वृषवत् कन्यामकरयोः, मिथुनवत्तुलाकुम्भयोः कर्कटवद्-वृश्चिकमीनयोर्नवांशकानां राश्यधिपा एवं अधिपतयो ज्ञेयाः।। ८।।

मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, शनि, बृहस्पति-ये क्रम से मेषादि १२ राशियों के स्वामी हैं। तथा मेषादि राशियों के नवांशादिकों के भी क्रम से मङ्गलादिक ही स्वामी होते हैं। एवं मेषादि १२ राशियों से क्रम से मेषादि, मकरादि, तुलादि और कर्कादि तीन आवृत्ति करके नवांश होते हैं। जैसे मेष में मेषादि ९, वृष में मकरादि ९, मिथुन में तुलादि ९ तथा कर्क में कर्कादि ९ राशि। स्पष्टार्थ चक्र देखें-

विशेष-इसका प्रयोजन जन्मकाल में राशि और नवांश में जो बली रहता है उसी के समान जातक का रूप-वर्ण आदि समझा जाता है।।८।।

नवांश - बोधक चक्र -

भाग	अं०कं०	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन
१	३-२०	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क
२	६-४०	वृष	कुंभ	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुंभ	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुंभ	वृश्चिक	सिंह
३	१०-००	मिथुन	मीन	धनु	कन्या	मिथुन	मीन	धनु	कन्या	मिथुन	मीन	धनु	कन्या
४	१३-००	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला
५	१६-४०	सिंह	वृष	कुंभ	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुंभ	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुंभ	वृश्चिक
६	२०-००	कन्या	मिथुन	मीन	धनु	कन्या	मिथुन	मीन	धनु	कन्या	मिथुन	मीन	धनु
७	२३-२०	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर	तुला	कर्क	मेष	मकर
८	२६-४०	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुंभ	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुंभ	वृश्चिक	सिंह	वृष	कुंभ
९	३०-००	धनु	कन्या	मिथुन	मीन	धनु	कन्या	मिथुन	मीन	धनु	कन्या	मिथुन	मीन

होरा-द्रेष्काण-द्वादशांश के स्वामी-

स्वगृहाद् द्वादशभागा: द्रेष्काणा: प्रथमपञ्चनवपानाम्।
होरे विषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रतीक्ष्णांश्वोः ।।६।।

सं० टी०- द्वादशभागद्रेष्काणहोराधिपतिज्ञानमाह। स्वगृहात् आरभ्य द्वादशभागा:२। ३०गणनीया:। मेषस्य मेषाद्या मीनान्ता:, वृषस्य वृषभाद्या मेषान्ता:, एवं सर्वत्र। द्वादशांशकानां राश्यधिपा एवाऽधिपतय;। द्रेष्काणा: प्रथमपञ्चनवपानामिति। द्रेष्काणो राशित्रिभाग:। एवं यथाक्रम: प्रथमपञ्चनवपानां सम्बन्धिनो भवन्ति। तथा मेषस्य प्रथमोऽङ्गारक: तस्य सम्बन्धी। द्वितीय: पञ्चमस्याधिपस्यार्कस्य सम्बन्धी, तृतीयो नवमाधिपस्य जीवस्य सम्बन्धी एवं वृषादीनामपि। होरे विषमे इति। होरा राश्यर्धं १५ तत्र विषमराशीनां मेषमिथुनसिंहादीनां प्रथमहोरादित्यस्य द्वितीयहोरा चन्द्रमस:। समराशीनां वृषकर्कटकन्यादीनां प्रथमा चन्द्रमस:। समराशीनां वृषकर्कटकन्यादीनां प्रथमा चन्द्रमस:, द्वितीयार्कस्य।।६।।

मेषादि राशियों में तद्-तद् राशि से ही आरम्भकर १२, १२ राशियों के द्वादशांश होते हैं। अर्थात् मेष में प्रथम द्वादशांश (२। ३० अंश तक) मेष का आगे ५। ०० अंश तक वृष का इत्यादि। तथा प्रत्येक राशि में ३ द्रेष्काण (तृतीयांश) होते हैं। उनमें प्रथम उसी राशि का, द्वितीय द्रेष्काण उस राशि से ५ वाँ का, तृतीय द्रेष्काण अपने से नवीं राशि के स्वामी का होता है। एवं विषम (मेष, मिथुन आदि) राशियों में प्रथम होरा सूर्य की, द्वितीय चन्द्रमा की और सम (वृष, कर्क आदि) राशियों में प्रथम चन्द्रमा की, द्वितीय सूर्य की होरा होती है।।६।।

होरा शब्द से यहाँ राशि का आधा (१५ अंश) समझना।

विशेष- गर्भाधान से जन्मकाल ज्ञान के लिए चन्द्रमा के 'द्वादशांश' का प्रयोजन पड़ता है। चोर आदि (स्त्री, पु०) के स्वरूप ज्ञान में 'द्रेष्काण' का तथा जातक मृदुल स्वभाव वाला है अथवा तेजस्वी है, इसका ज्ञान 'होरा' द्वारा ज्ञात किया जाता है।

द्रेष्काण-बोधक चक्र —

अ. क.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
१-१०	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी
	म	शु	बु	च	सू	बु	शु	मं	वृ	श	श	वृ
११-२०	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी	मे	वृ	मि	क
	सू	बु	शु	मं	वृ	श	श	वृ	मं	शु	बु	चं
२१-३०	ध	म	कु	मी	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ
	वृ	श	श	वृ	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं

द्वादशांश चक्रम् —

अंश	मेष	वृष	मि.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन
२-३०	मेष	वृष	मि.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन
५-००	वृष	मि.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष
७-३०	मि.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष
१०-००	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु
१२-३०	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क
१५-००	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह
१७-३०	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह	कन्या
२०-००	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह	कन्या	तुला
२२-३०	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि
२५-००	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु
२७-३०	कुंभ	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर
३०-००	मीन	मेष	वृष	मिथु	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि	धनु	मकर	कुंभ

होराचक्रम्-

लग्नं	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन
१५अं.	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र
३०अं.	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य	चंद्र	सूर्य

त्रिंशांश के स्वामी-

कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।
विषमेषु समर्क्षेषूत्क्रमेण त्रिंशांशपाः कल्प्याः ।।१०।।

सं० टी०- त्रिशांशाधिपानाह। विषमराशिषु यथाक्रमेण कुजादीनां पञ्चादयो भागाः त्रिशांशकाः कल्प्याः। तत्रादावेवाङ्गारकस्य पञ्च, ततः परं मन्दस्य पञ्च, ततो जीवस्याष्टौ, ततः परं बुधस्य सप्त, ततः शुक्रस्य पंच। एव समराशिषूत्क्रमेण यथा प्रथमाः पंच, शुक्रस्य, ततः सप्त बुधस्य, ततोऽष्टौ जीवस्य, ततः पंच सौरस्य, ततः पञ्च भौमस्य।।१०।।

विषम राशियों में आदि से ५ अंश मंगल के, उसके बाद ५ अंश शनि के, ८ अंश बृहस्पति के, ७ अंश बुध के तथा अन्त में ५ अंश शुक्र के त्रिंशांश होते हैं। तथा सम राशियों में इससे विपरीत (अर्थात् शुक्र के ५, बुध के ७, बृहस्पति के ८, शनि के ६, मंगल के ८ अंश) त्रिंशांश होते हैं।।१०।।

विशेष- त्रिंशांश का प्रयोजन सूर्याश्रित त्रिशांश से जातक के सत्त्वादि गुण जानने में होता है।

त्रिंशांश-बोधक चक्र-

त्रिंशांशपाः	मंगल	शनि	गुरु	बुध	शुक्र	विषमराशि
	५	५	८	७	५	
त्रिंशांशपाः	शुक्र	बुध	गुरु	शनि	मंगल	समराशि
	५	७	८	५	५	

राशियों की द्विपदादि संज्ञा-

नृचतुष्पदकीटाप्या बलिनः प्राग्दक्षिणापरोत्तरगाः ।
सन्ध्याद्युरात्रिबलिनः कीटा नृचतुष्पदाश्चैवम् ।।११।।
मेषवृषधन्विसिंहाश्चतुष्पदा मकरपूर्वभागश्च ।
कीटः कर्कटराशिः सरीसृपो वृश्चिकः कथितः ।।१२।।
मकरस्य पश्चिमार्ध ज्ञेयो मीनश्च जलचरः ख्यातः ।
मिथुनतुलाघटकन्या द्विपदाख्या धन्विपूर्वभागश्च ।।१३।।

सं० टी०-राशीनां दिक्कालबलमाह। नृराशयो मिथुनकन्यातुला-कुम्भधन्विपूर्वार्द्धमेते पूर्वस्था बलिनः। लग्नगता इत्यर्थः। चतुष्पदा मेषवृषसिंहधन्विपरार्द्धे मकरपूर्वार्द्धं एते दक्षिणस्था बलिनो दशमस्थानगता इत्यर्थः। कीटो वृश्चिकः स पश्चिमस्थो बली सप्तमस्थ इत्यर्थः। कर्कटम-**करपरार्धमीना** आप्याः एते चोत्तरस्था बलिनश्चतुर्थस्थानगता इत्यर्थः। **सन्ध्याद्युरात्रिबलिन** इति। अत्र जलराशयोऽपि कीटग्रहणेन गृह्यन्ते। एव कीटः सन्ध्याकाले बली नरराशयो दिवाकाले बलिनश्चतुष्पदा रात्रौ बलिनः।।११-१३।।

पूर्वदिशा (लग्न में) द्विपद राशि, दक्षिण दिशा (दशमभाव में) चतुष्पद राशि, पश्चिमदिशा (सप्तमभाव में) कीटराशि, उत्तरदिशा (चतुर्थभाव में) जलचर राशि बली होती है। तथा कीट (कर्क, वृश्चिक, मीन, मकरोत्तरार्ध), ये दोनों सन्ध्या में एवं द्विपद राशि दिन में और चतुष्पद राशि रात में बली होती है।

मेष-वृष-धनु का उत्तरार्ध-सिंह और मकर का पूर्वार्ध चतुष्पद **संज्ञक**, कर्क, वृश्चिक कीट और सरीसृप **संज्ञक; मकर का** उत्तरार्ध-**मीन जलचर** संज्ञक तथा मिथुन-तुला-**कुम्भ-कन्या**-धनु का पूर्वार्ध **द्विपद** (नर) संज्ञक हैं।।११-१३।।

विशेष-कीट राशि संज्ञक जो चार राशियाँ ऊपर कही गई हैं, वहाँ कर्क, वृश्चिक को सायं सन्ध्या में तथा मीन, मकरोत्तरार्ध को प्रातः सन्ध्या में बली जानना चाहिये। एवं यहाँ 'कीट' शब्द से जलचर राशि का भी ग्रहण किया गया है।

राशिबल-

अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवयुतेक्षितश्च यो राशिः।
स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषैः ।।१४।।

सं० टी०-अथ राशिबलज्ञानार्थमाह अधिपयुतः। स्व-स्वामिना युतो दृष्टो वा राशिर्बलवानेव। बुधजीवयोरन्यतमेन युक्तो दृष्टो वा बलवानेव। यदाऽन्यैर्ग्रहैरयुतो नाऽपि वीक्षितः। अनुक्तदृष्टो युतो वा स्वस्वामिना युक्तो राशिर्बलवान् भवति। स्वामिना दृष्टः अन्यैः उक्तानुक्तैर्दृष्टा राशिर्मध्यबलो भवति। स्वस्वामिना बुधजीववर्ज्यमन्यैर्युतदृष्टो बलहीन एव।।१४।।

जो राशि अपने स्वामी से युत वा दृष्ट हो अथवा बुध और बृहस्पति से युत-दृष्ट हो तथा अन्य (शेष) ग्रह से युक्त वा दृष्ट न हो तो वह राशि बली होती है।।१४।।

विशेष-जो राशि अपने स्वामी + बुध + गुरु तीनों से ही युत-दृष्ट हो और शेष ग्रहों से युत-दृष्ट न हो तो पूर्ण-बली, अन्य ग्रहों से भी युत-दृष्ट होने से मध्यबली और यदि अपने स्वामी अथवा बुध-गुरु किसी से भी युतदृष्ट न हो तो बलहीन समझना चाहिये।

लग्नादिभाव संज्ञा-

तनुधनसहजसुहृत्सुतरिपुजायामृत्युधर्मकर्मायाः ।
व्यय इति लग्नाद्भावाश्चतुरस्राख्येऽष्टमचतुर्थे ।।१५।।

सं० टी०- लग्नादीनां तन्वादिभावाश्रयत्व व्यवहारार्थमाह। लग्नादारभ्यामा तन्वादयो भावाः। तत्र लग्नं प्रथमं पुरुषस्य शरीरं

द्वितीयं धनस्थानं तृतीयं सहजं चतुर्थं सुहृत् भ्रातृमित्रसंज्ञं वा पञ्चमं सुतः षष्ठं शत्रुः सप्तमं जाया भार्या अष्टमं मृत्युः नवमं धर्मः दशमं कर्म एकादशं आयः द्वादशं व्ययः। प्रयोजनं लग्नादीनां यथोक्तभावानां शुभपापग्रहसंयोगात्सम्पत्तिविपत्तीचिन्तनीये इति। चतुरस्राख्येऽष्टम-चतुर्थे लग्नादष्टमस्थानस्य चतुर्थस्थानस्य चतुरस्र इत्याख्या।।१५।।

तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, व्यय-ये क्रम से लग्नादि द्वादशभावों के नाम हैं। तथा लग्न से ४।८ भावों की चतुरस्र संज्ञा है।।१५।।

पातालहिबुकवेश्मसुखबन्धुसंज्ञाश्चतुर्थभावस्य ।
नव-पञ्चमे त्रिकोणे नवमर्क्षं त्रित्रिकोणं च ।।१६।।

सं० टी०-चतुर्थनवमपञ्चमानां संज्ञान्तरमाह। लग्नाच्चतुर्थभवनस्य पातालसंज्ञा सुखसंज्ञा वेश्मसंज्ञा हिबुकसंज्ञा बन्धुसंज्ञा च। तथा च नवमस्य पंचमस्य च त्रिकोण इत्याख्या। नवमस्य त्रित्रिकोणमित्यपि च।१६।

चतुर्थ भाव की पाताल, हिबुक, वेश्म (गृह), सुख, बन्धु संज्ञा है और नवम तथा पञ्चम की त्रिकोण एवं केवल नवमभाव की त्रि-त्रिकोण संज्ञा है।।१६।।

धीः पञ्चमं तृतीयं दुश्चिक्यं सप्तमं तु यामित्रम् ।
द्यूनं द्युनं च तद्वच्छिद्रमष्टमं द्वादशं रिष्फम् ।।१७।।

सं० टी०-पंचमतृतीयसप्तमाष्टमद्वादशस्थानानां संज्ञान्तरमाह-लग्नात्पञ्चमस्थानं धीसंज्ञं तृतीयं दुश्चिक्यसंज्ञं सप्तमं यामित्रसंज्ञं द्यूनं द्युनं च तत्तदेव सप्तमस्थानं सप्तमं यामित्रसंज्ञं द्युनसंज्ञं द्यूनसंज्ञं च अष्टमस्थानं छिद्रसंज्ञं छिद्रं क्षतपर्यायं लग्नाद् द्वादशं रिष्फसंज्ञम्।।१७।।

पञ्चमभाव धी (बुद्धि), तृतीय की दुश्चिक्य, सप्तम की जामित्र, द्यून, द्युन एवं अष्टमभाव की छिद्र तथा द्वादश भाव की

रिष्फ संज्ञा है।।१७।।

केन्द्रादि संज्ञा-

केन्द्रचतुष्टयकण्टकलग्नाऽस्तदशमचतुर्थानाम् ।
संज्ञा परतः पणफरमापोक्लीमं च तत्परतः ।।१८।।

सं०टी०-स्थानानां संज्ञान्तरमाह। लग्नचतुर्थसप्तमदशमानां चतुर्णां-स्थानानां प्रत्येकस्य संज्ञात्रयं केन्द्रं चतुष्टयं कण्टकमिति। तत्सर्वस्मात्केन्द्रा-त्परस्य पणफरमित्याख्या। सर्वस्मात्पणफरात्परस्यापोक्लीमेत्याख्या।१८।

लग्न,४,७,१० इन भावों को कण्टक, केन्द्र और चतुष्टय संज्ञा है। केन्द्र के आगे के (२,५,८,११ इन चार) स्थानों का नाम पण-फर तथा इनके आगे के (३,६,९,१२ये) आपोक्लीम संज्ञकहैं।१८।

उपचय तथा वर्गोत्तमनवांश-

त्रिषडेकादशदशमान्युपचयभवनान्यतोऽन्यथाऽन्यानि।
वर्गोत्तमा नवांशाश्चरादिषु प्रथममध्यान्त्याः ।।१९।।

सं० टी०-उपचयापचयसंज्ञां नवांशकानां वर्गोत्तमसंज्ञां चाह। तृतीयषष्ठैकादशदशमानामुपचयमित्याख्या। अतोऽन्यथाऽन्यानि उपचयेभ्यो यान्यवशेषस्थानानि तान्यपचयानि इत्यर्थः। वर्गोत्तमा नवांशाश्चरराशिषु प्रथमनवांशस्य वर्गोत्तमः स्थिरराशिषु मध्यमस्य पञ्चमस्य द्विःस्वभावराशेश्चान्त्यस्य नवांशस्य। एतदुक्तं भवति। सर्वस्यैव राशेः स्वनवांशको वर्गोत्तमाख्य इति।।१९।।

लग्न से ३, ६, १०, ११ इन चार स्थानों की उपचय संज्ञा है। और इनके अलावा शेष स्थान (१, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १२ ये) अनुपचय संज्ञक हैं एवं चर, स्थिर, द्विस्वभाव में क्रम से प्रथम (१ पहिला), मध्यम (५ वाँ) **तथा अन्तिम** (९ वाँ) **नवांश** वर्गोत्तम कहलाता है।।१९।।

विशेष- किसी भी राशि का अपना ही नवांश वर्गोत्तम कहलाता है। जैसे- मेषादि चर राशियों में प्रथम, वृषादि स्थिर राशियों में पंचम तथा मिथुन आदि द्विस्वभाव राशियों में नवम नवांश अपना ही होता है। अतः वर्गों में उत्तम (स्वकीय) होने से यह शुभफलदायक कहा गया है।

राशियों के दिन-रात्रिबल और शीर्षोदय-पृष्ठोदयत्व-

मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेयाः।
पृष्ठोदया विमिथुनाः शिरसान्ये ह्युभयतो मीनः।।२०।।

सं० टी०- राशीनां दिनरात्रिबलपृष्ठोदयत्वशीर्षोदयत्वमाह। मेषाद्याश्चत्वारो मेषवृषमिथुनकर्कटा धन्विमकराभ्यां सह एते षड्राशयो रात्रिबलिनः। अन्ये दिनबलाः। अत्र यद्यपि बलग्रहणमस्ति तथापि संज्ञामात्रं वेदितव्यं यथा रात्रिसंज्ञा तथा दिनसंज्ञा इति। यतस्ते द्युबलं सन्ध्याद्युरात्रिबलिन इति। पृष्ठोदया विमिथुना इति। मेषवृष-कर्कटधन्विमकराः पृष्ठोदयसंज्ञाः। अन्ये मिथुनसिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भाः शीर्षोदयसंज्ञाः। मीनः शीर्षोदयः पृष्ठोदयश्चेति।।२०।।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु और मकर-ये ६ रात्रिबली और शेष राशियाँ दिनबली हैं। मेष, वृष, कर्क, धनु, मकर-ये पृष्ठोदय तथा मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ-ये शीर्षोदय संज्ञक परञ्च मीन उभयोदय (शीर्ष-पृष्ठोदय) है।।२०।।

विशेष-जातक के जन्म सग्रंथ में प्रथम अङ्गोदय जानने में इसका प्रयोजन होता है।

ग्रहों के उच्च-नीच और त्रिकोण स्थान-

अजवृषमृगाङ्गनाकर्किमीनवणिजांशकेष्विनाद्युच्चाः।
दशशिख्यष्टाविंशतितिथीन्द्रियत्रिनवविंशेषु ।।२१।।
उच्चान्नीचं सप्तममर्कादीनां त्रिकोणसंज्ञानि।
सिंहवृषाजप्रमदा- कार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः।।२२।।

सं० टी० - अर्कादीनामुच्चराशीनाह। सारावल्यां-

विंशतिरंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य।
उच्चं भागत्रितयं वृष इन्दोः स्यात्त्रिकोणमपरे स्युः।।
द्वादशभागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य।
उच्चफलं कन्यायां बुधस्य तुङ्गांशकैः सदा चिन्त्यम्।।
परतस्त्रिकोणजातं पञ्चभिरंशैः स्वराशिजं परतः।
दशभिर्भागैश्चापे त्रिकोणमपरे स्वभं तु देवगुरोः।।
शुक्रस्यांशातिथयस्त्रिकोणमपरे स्वभं तुलायां च।
कुम्भे त्रिकोणनिजभे रविजस्य रवेर्यथा सिंहे।।

तद्यथाः- आदित्यस्य मेष उच्चं चन्द्रस्य वृष उच्चं भौमस्य मृगो मकरः बुधस्य कन्या गुरोः कर्कः शुक्रस्य मीनः मन्दस्य वणिक् तुला एवं सर्वराशिषूच्चसंज्ञा दशादिषु भागेषु व्यवस्थिताः परमोच्चस्था भवन्ति। तद्यथा-मेषस्य दशमांशे व्यवस्थितोऽर्कः परमोच्चस्थो भवति, वृषस्य तृतीयभागे चन्द्रः मकरस्याष्टाविंशतिभागे भौमः कन्यायाः पञ्चदशे बुधः कर्कटस्य पञ्चमे जीवः मीनस्य सप्तविंशे शुक्रस्तुलायां विंशतितमे सौरिः एवं विधाः परमोच्चस्था उदिताः ग्रन्थान्तरे च। रवेर्मेषतुले प्रोक्ते चन्द्रस्य वृषवृश्चिकौ। भौमस्य मृगकर्कौ च कन्यामीनौ बुधस्य च।। जीवस्य कर्कमकरौ मीनकन्ये सितस्य च। तुलामेषौ च मन्दस्य उच्चनीचे उदाहृते।। ग्रहाणामुच्चनीचस्थानानि त्रिकोणानि चाह। यस्य ग्रहस्य यदुच्चै तस्मामुच्चस्थानात् सप्तमं नीचसंज्ञं तत्र दशादिष्वंशेषु परमनीचत्वं ज्ञेयम्। अत्र न्यासः एवं विधाः सूर्योदयः परमनीचस्था भवन्ति। अर्कादीनां त्रिकोणसंज्ञानीति। आदित्यस्य सिंहस्त्रिकोणाख्यः चन्द्रमसो वृषः भौमस्य मेषः बुधस्य कन्या जीवस्य धनुः शुक्रस्य तुला मन्दस्य कुम्भ इत्यर्थः।।२१-२२।।

१० अंश से मेष-सूर्य का, ३ अंश से वृष-चन्द्रमा का, २८ अंश से मकर मंगल का, १५ अंश से कन्या-बुध का, ५ अंश से कर्क-बृहस्पति का, २७ अंश से मीन-शुक्र का और २० अंश से तुला-शनि का उच्च है। तथा अपने-अपने उच्च से सप्तम राशि उतने ही अंशों से सब ग्रहों का नीच समझना। एवं सिंह, वृष, मेष, कन्या, तुला, धनु और कुम्भ राशि-ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के त्रिकोण (मूलत्रिकोण) हैं।।२१-२२।।

ग्रहों की षड्वर्ग संज्ञा-

गृहहोराद्रेष्काणा नवभागो द्वादशांशकस्त्रिंशः।
वर्गः प्रत्येतव्यो ग्रहस्य यो यस्य निर्दिष्टः।।२३।।

सं० टी०-षड्वर्गज्ञानार्थमाह। आत्मीयो राशिर्ग्रहस्य गृहसंज्ञः। आत्मीया होरा आत्मीयश्च द्रेष्काणः आत्मीयो नवमभागः आत्मीयो द्वादशांशः आत्मीयस्त्रिंशद्भागः एतेषां षड्वर्गसंज्ञा यद्यप्येवं तथाप्यात्मीयेषु स्थितः स्ववर्गस्थो भवति। वर्गशब्दस्य समुदायवाचित्वात् यत्र चन्द्रार्कयोः त्रिंशांशकाभावो भौमादीनां होराभावः एवं षष्ठानामसम्भवः। स्वगृहाधिष्ठितो वर्गस्थः। परवर्गस्थस्याप्येवमेवेति ज्ञातव्यम्।।३।।

जिस ग्रह के जो गृह-होरा-द्रेष्काण-नवांश-द्वादशांश त्रिंशांश बताये गये हैं, वे उस ग्रह के वर्ग कहाते हैं।।२२।।

विशेषः- पूर्व में जो गृहादि पृथक्-पृथक् षड्वर्ग कहे गये हैं उनमें किसी के भी आत्मीय ६ वर्ग नहीं हो सकते, क्योंकि सूर्य और चन्द्रमा के त्रिंशांश नहीं होते एवं मंगलादि ग्रहों की होरा नहीं होती है, अतः इनमें आत्मीय वर्ग ५ ही सिद्ध होते हैं। इसलिये इनमें ३ भी आत्मीय वर्ग प्राप्त हो जाय तो श्रेष्ठ समझा जाता है।

इति लघुजातके राशिप्रभेदाध्यायः।।१।।

अथ ग्रहभेदाध्यायः ।।२।।

ग्रहों के आत्मादि विभाग-

आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः
सत्त्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च
शुक्रःशनिःकालनरस्य दुःखम्।।१।।

आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतः शनिः स्मृतः।।२।।

ग्रहों के राजादि विभाग-

राजा रविः शशधरश्च बुधः कुमारः
सेनापतिः क्षितिसुतः सचिवौ सितेज्यौ।
भृत्यस्तथा तरणिजः सबला ग्रहाश्च
कुर्वन्ति जन्मसमये निजमेव रूपम्।।३।।

सं० टी०- एते स्पष्टार्थाः।।१-३।।

सूर्य सबकी आत्मा, चन्द्रमा-मन, मंगल-बल, बुध-वाणी, बृहस्पति-ज्ञान और सुख, शुक्र-मदन (वीर्य) तथा शनि-दुःख है।

आत्मा आदि ग्रहों के बली होने से आत्मा आदि पुष्ट और निर्बल होने से आत्मा-मन आदि भी दुर्बल होते हैं। परञ्च शनि को विपरीत समझना।

सूर्य और चन्द्रमा राजा, बुध-राजकुमार (युवराज), मङ्गल-सेनापति, बृहस्पति और शुक्र-मन्त्री तथा-शनि भृत्य (नौकर) हैं। जिसके जन्म समय में जो ग्रह बली रहता है उसी के सदृश जातक के रूप (बल, बुद्धि, गुण आदि) होते हैं।।१-३।।

विशेष- जिस व्यक्ति की कुण्डली में जो ग्रह निर्बल रहता है, उसका उक्त आत्मादि विभाग भी निर्बल समझना चाहिये। तथा चूँकि शनि की संज्ञा दुःख है, अतः शनि का बली रहना मनुष्य के लिये ठीक नहीं, इस अभिप्राय से शनि का दुर्बल रहना शुभसूचक कहा गया है।

दिशास्वामी तथा पाप और शुभग्रह-

प्राच्यादीशा रविसितकुजराहुयमेन्दुसौम्यवाक्पतयः ।
क्षीणेन्द्वर्कयमाराः पापास्तैः संयुतः सौम्यः ।।४।।

सं० टी०- अथातो ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रादौ ग्रहाणां दिक्स्वाम्यं सौम्यपापत्वं चाह। तत्र पूर्वस्यां दिश्यर्काऽधिपतिः, पूर्वदक्षिणस्यां शुक्रः, दक्षिणायां भौमः, दक्षिणपश्चिमायां राहुः, पश्चिमायां सौरिः, पश्चिमोत्तरायां चन्द्रः, उत्तरस्यां बुधः, उत्तरपूर्वस्यां जीवः। तद्यथा- पूर्वे रविः, आग्नेय्यां शुक्रः, दक्षिणे कुजः नैर्ऋत्यां राहुः, पश्चिमे शनिः, वायव्यां चन्द्रः, उत्तरस्यां बुधः, ईशान्यां गुरुः। क्षीणेन्द्वर्कयमारा इति। कृष्णपक्षस्याष्टम्या ऊर्ध्वं शुक्लपक्षस्याष्टमीं यावत्क्षीणचन्द्रो भवति। क्षीणश्चन्द्र आदित्याङ्गरकशनैश्चराः पापसंज्ञकास्तैः संयुतो बुधोऽति पापो भवति। एषां पापानां मध्येऽन्यतमेन युक्तो बुधः पाप एवं अर्था- देवाऽक्षीणचन्द्रमाः सौम्यः बुधबृहस्पतिशुक्राश्च सौम्या ज्ञेया इति।।४।।

सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बृहस्पति-ये क्रम से पूर्व आदि (अर्थात् पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायु, उत्तर और ईशान कोण) दिशाओं के स्वामी हैं। तथा क्षीण-चन्द्रमा (कृष्णपक्ष की अष्टमी से शुक्लपक्ष की सप्तमी तक), सूर्य, मंगल और शनि-ये पापग्रह हैं एवं इनसे युत हो तो बुध भी पापी ही समझा जाता है। अर्थात् इनके अतिरिक्त(पूर्ण-चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र) ये शुभग्रह हैं।।४।।

विशेष- जातक के लिये लाभदायक दिशा एवं सूतिका के गृह का द्वार किस दिशा में है, इत्यादि ज्ञान के लिये दिक् स्वामी का प्रयोजन होता है तथा पाप-शुभ का प्रयोजन सर्वत्र विचारणीय है।

ग्रहों की पुं-स्त्री संज्ञा तथा वेदों के अधिप-

क्लीबपती बुधसौरी चन्द्रसितौ योषितां नृणां शेषाः ।
ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्य - भौमसिताः ।।५।।

सं० टी०- ग्रहाणां स्त्रीपुन्नपुंसकाऽधिपत्यं शाखाधिपत्यं चाह। बुधशनैश्चरौ नपुंसकाधिपती, चन्द्रसितौ स्त्रीणामधिपती, शेषा आदित्याङ्गारकबृहस्पतयस्ते नृणामधिपतयः। प्रयोजनं चोरज्ञानादि। ऋगथर्वेत्यादि। ऋग्वेदाधिपतिर्जीवः, अथर्ववेदाधिपतिर्बुधः, यजुर्वेदाधपतिः शुक्रः, सामवेदाधिपतिः भौमः। प्रयोजनं बलवति शाखाधिपतौ कुले जातस्तद्विद्याश्रेष्ठो ब्राह्मणो भवति। ब्राह्मणे चोरविज्ञानशाखाविज्ञानग्रहपीडायां तच्छाखापठनं पूजनमिति।।५।।

बुध, शनि नपुंसकों के, चन्द्रमा, शुक्र स्त्रियों के तथा शेष (सूर्य, मंगल, बृहस्पति) ग्रह पुरुषों के स्वामी हैं। एवं बृहस्पति, बुध, मंगल और शुक्र में क्रम से ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद के अधिपति (स्वामी) हैं।।५।।

विशेष- जन्म समय में जातक के और प्रश्न समय में चोर आदि के पुंस्त्रीत्व, पुंग्रहादि से जाना जाता है तथा ग्रहादिजन्य अरिष्ट शान्ति, पूजनादि में ग्रहों के वेदाधिपति का प्रयोजन होता है।

ब्राह्मणादि वर्गों के अधिप-

जीवसितौ विप्राणां क्षत्राणां रविकुजौ विशां चन्द्रः ।
शूद्राधिपः शशिसुतः शनैश्चरः सङ्करभवानाम् ।।६।।

सं० टी०- ग्रहाणां वर्णाधिपत्यमाह। जीवशुक्रौ ब्राह्मणानामधिपती, सूर्याङ्गारको क्षत्रियाणामधिपतिश्चन्द्रो वैश्याधिपतिः बुधः शूद्राधिपतिः शनैश्चरः संकरभवानामधिपतिः प्रतिलोमजानां सूतमागधादीनामित्यर्थः।।६।।

बृहस्पति, शुक्र ब्राह्मणों के स्वामी, सूर्य, मंगल क्षत्रियों के स्वामी,

चन्द्रमा वैश्यों का, बुध शूद्रों का एवं शनिग्रह संकरों (म्लेच्छ, नीच) जातियों का स्वामी है।।६।।

विशेष- जातक अथवा चौरादिकों के वर्ण ज्ञान में इसका प्रयोजन होता है।

ग्रहों के स्थान बल-

बलवान् स्वगृहोच्चांशे मित्रर्क्षे वीक्षितः शुभैश्चापि ।
चन्द्रसितौ स्त्रीक्षेत्रो पुरुषक्षेत्रोपगाः शेषाः ।।७।।

सं० टी०- बलाबलप्रकरणमाह। मित्रक्षेत्रस्थो ग्रहो बलवान् भवति, स्वगृहस्थः स्वोच्चस्थः स्वनवमांशकस्थश्च उच्चादिसाहचर्यात् त्रिकोणस्थोऽपि। यस्मादुक्तं स्वोच्चसुहृत्स्वत्रिकोणनवांशैः स्थानबलमिति वीक्षितः शुभैश्चापि यतस्तत्रस्थो ग्रहः शुभैर्दृष्टो बलवान् भवति। चन्द्रसितौ स्त्रीक्षेत्रे वृषादौ समराशौ व्यवस्थितौ बलिनौ भवतः। शेषा आदित्याङ्गारकबुधजीवसौरयः पुरुषक्षेत्रस्थाः विषमराशौ मेषादौ व्यवस्थिताः बलवन्तो ज्ञेया इति।।७।।

अपनी राशि, अपने उच्च, अपने नवांश, अपने मित्र की राशि और शुभग्रह से दृष्ट-ग्रह स्थान बली होते हैं। चन्द्रमा और शुक्र वृषादिक समराशियों में तथा शेष (सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शनि) ग्रह मेषादिक विषमराशियों में स्थित हो तो बली होते हैं।।७।।

ग्रहों के दिग्बल, चेष्टाबल-

प्राच्यादिषु जीवबुधौ सूर्यारौ भास्करिः शशांकसितौ ।
उदगयने शशिसूर्यौ वक्रेऽन्ये स्निग्धविपुलाश्च ।।८।।

सं० टी०- दिग्बलचेष्टाबलयोर्ज्ञानार्थमाह। पूर्वदिक्स्थौ जीवबुधौ बलिनौ भवतः लग्नगतावित्यर्थः। आदित्याङ्गारकौ दक्षिणस्थौ बलिनौ दशमस्थावित्यर्थः। शनैश्चरः पश्चिमस्थौ बली लग्नात् सप्तमस्थ इत्यर्थः। चन्द्र शुक्रावुत्तरस्थौ बलिनौ चतुर्थस्थावित्यर्थः। एतद्दिग्बलम्। अथ चेष्टाबलम्। उदगयन इत्यादि-मकरादिराशिषट्के वर्तमानोदगयनस्थो भवति कर्कादिराशिषट्के वर्तमानो दक्षिणायनस्थश्च। तत्रोत्तरायणस्थौ

अर्कशशिनौ बलिनौ, वक्रेऽन्ये। स्फुटगत्या प्रतीपगतयः वक्रिण उच्यन्ते। भौमादयो वक्रगताश्च बलिनो भवन्ति। तथा गगने स्निग्धा दृश्यमाना बलिनो भवन्ति विपुला बृहत्प्रमाणा दृश्या वा।।८।।

बुध और बृहस्पति पूर्वदिशा (१ २ लग्न, २ भावों में), सूर्य और मंगल दक्षिण-दिशा (९,१०,११ भावों) में, शनि पश्चिम-दिशा (६,७,८ भावों) में तथा चन्द्रमा और शुक्र- ये उत्तर-दिशा (४, ५,३ भावों) में बली होते हैं-यह ग्रहों का दिग्बल कहलाता है। चन्द्रमा-सूर्य ये दोनों उत्तरायण (मकरादि ६ राशि में रहने पर) और शेष मंगलादि ५ ग्रह वक्रगति होने पर और जब स्वच्छ रश्मि एवं बृहद्विम्ब (दृश्य) होते हैं-तब चेष्टाबली समझे जाते हैं।८।

विशेष- दिग्बली ग्रह की दशा में उस दिशा में यात्रा करने से मनोरथ सिद्धि होती है। एवं चेष्टाबलयुत ग्रह की दशा में भी शुभफल समझना चाहिये।

ग्रहों के कालबल-

अहनि सितार्कसुरेज्या द्युनिशं ज्ञो नक्तमिन्दुकुजसौराः।
स्वदिनादिष्वशुभशुभा बहुलोत्तरपक्षयोर्बलिनः।।९।।

सं० टी०- कालबलमाह। अहनि दिवसे शुक्रादित्यजीवा बलिनः। ज्ञो बुधः द्युनिशं अहोरात्रं बली। नक्तंरात्रौ चन्द्राङ्गारकशनैश्चरा बलिनः। स्वदिनादिष्वति स्वदिवसे सर्वे ग्रहा बलिनो भवन्ति। आदिग्रहणात् स्वाब्दे स्वमासे स्वकाले होरायां च। अशुभशुभा इति। अशुभाः पापाः बहुलपक्षे कृष्णपक्षे बलिनः शुभाः सौम्याः शुक्लपक्षे बलिनः।।९।।

शुक्र-सूर्य-बृहस्पति, ये दिन में, बुध दिन और रात दोनों में एवं चन्द्रमा-मंगल-शनि, ये रात्रि में बली होते हैं। सब ग्रह अपने-अपने दिनादि (दिन-मास-वर्ष) में, पापग्रह कृष्णपक्ष में और शुभग्रह शुक्लपक्ष में बली होते हैं।।९।।

*विशेष-*मासपति और वर्षपति जानने की विधि सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि-

मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ।
सप्तोधृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ।।'

अर्थात् सृष्ट्यादि से अहर्गण बनाकर उसमें मास संख्या (३०) से भाग देकर जो लब्धि हो उसको दूना करके १ जोड़कर ७ के भाग देने से जो शेष बचे वह रव्यादि गणना से जो वार आवे, वही मासपति होता है। एवं उसी अहर्गण में वर्ष संख्या (३६०) से भाग देकर लब्धि को ३ से गुणाकर १ जोड़कर ७ के भाग देने से जो शेष बचे वह रव्यादि गणना से जो वार (ग्रह) आवे, वह वर्षपति होता है।

ग्रहों के नैसर्गिकबल-

मन्दारसौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः।
नैसर्गिकबलमेतद्बलसाम्येऽस्माद्बलाधिकता ।।१०।।

सं० टी०- नैसर्गिकबलमाह-सर्वेभ्यो ग्रहेभ्यो मन्दो हीनबलः मन्दादङ्गारको बलवान् अङ्गारकाद्बुधः बुधाज्जीवः जीवाच्छुक्रः शुक्राच्चन्द्रः चन्द्रादादित्यः एतद्ग्रहाणां नैसर्गिकं स्वाभाविकबलम्। बलसाम्येऽस्मादधिकचिन्ता। यत्र पूर्वोक्तं ग्रहयोस्तुल्यबलं भवति तत्र नैसर्गिकबलेन चाधिकबलः स ततो बलवान् भवति।।१७।।

शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा, सूर्य-ये उत्तरोत्तर बली हैं। (अर्थात् शनि से मंगल, मंगल से बुध इत्यादि) कथित षड्बल के योग में यदि दो ग्रहों के बलों में समता हो जाय तो इस नैसर्गिक (स्भावसिद्ध) बल से जिस ग्रह को अधिक बल प्राप्त हो, वही बलवान् होता है।।१०।।

ग्रहों के स्थानबल-

मित्रक्षेत्रे स्वोच्चे स्वहोरायां स्वभवनत्रिकोणे च ।
स्वद्रेष्काणे स्वांशे स्वदिने च बलान्विताः सर्वे ।।११।।

सं० टी०-स्थानबलज्ञानमाह। मित्रक्षेत्रस्थो ग्रहो बलवान् भवति, स्वोच्चस्थः स्वगृहस्य स्वत्रिकोणस्थः स्वद्रेष्काणस्थः स्वहोरास्थः स्वांशस्थः स्वदिनस्थः एतेषु स्थानेषु स्थितो ग्रहो बलवान् भवति।।११।।

ग्रह अपने मित्र की राशि में, अपने उच्च में, होरा में, अपनी राशि, अपने मूल-त्रिकोण, अपने द्रेष्काण, अपने नवांश और अपने दिन में बली होते हैं।।११।।

ग्रहों के दृष्टिस्थान-

दशम-तृतीये नव-पञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च।
पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति।।१२।।

सं० टी०-दृष्टिज्ञानार्थमाह। यस्मिन् स्थाने ग्रहः स्थितः तस्माद्दशमे तृतीये च पाददृष्ट्या पश्यति, नवमे पञ्चमे चार्धदृष्ट्या पश्यति, चतुर्थाष्टमे पादहीनं पश्यति, त्रिभिः पादैरित्यर्थः। कलत्रं सप्तमं सम्पूर्णदृष्ट्या पश्यति। एवं सर्वे ग्रहाः पश्यन्ति फलानि चैवं प्रयच्छन्ति। यत्र पादमेकं पश्यति तत्र पादमेकं फलं ददाति। यत्र पापद्वयं पश्यति तत्र पादद्वयफलम्। यत्र पादत्रयं पश्यति तत्र पादत्रयफलम्। यत्र सम्पूर्ण पश्यति तत्र सम्पूर्णफलं प्रयच्छन्ति।।१२।।

ग्रह अपने-अपने स्थान से ३।१० को एक चरण से ५।९ को २ चरण से, ४।८ को ३ चरण से और ७ (सप्तम) को ४ चरण (पूर्ण) दृष्टि से देखते है और फल भी दृष्टि के अनुपात से ही देते हैं।।१२।।

पूर्णम्पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः।
चतुरस्रं भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रं च।।१३।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।१३।। शनि ३।१० को, बृहस्पति ५।९ को, मङ्गल ४।८को भी पूर्ण (४चरण) दृष्टि से देखते हैं और शुक्र, सूर्य, बुध, चन्द्र, ये केवल अपने से सप्तम भाव को ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।१३।

इति लघुजातके ग्रहभेदाध्यायः।।२।।

अथ ग्रहमैत्रीविवेकाध्यायः ।।३।।

मित्रामित्र में अन्य आचार्यों के मत-

मित्राण्यर्काज्जीवो ज्ञगुरू ज्ञसितौ विभास्करा विकुजाः ।
वीन्द्वर्का विकुजरवीन्दवश्च केषांचिदरयोऽन्ये ।। १ ।।

सं०टी०- अथ मित्रप्रकरणमारभ्यते। तत्रादौ परमतेन मित्रामित्राण्याह। अर्कात् प्रभृति मित्राणि तत्रादित्यस्य जीवो मित्रं शेषाः शत्रवः, चन्द्रस्य बुधजीवौ मित्रे शेषाः शत्रवः, कुजस्य बुधशुक्रौ मित्रे शेषाः शत्रवः, बुधस्य विगतार्काः सर्वे मित्राणि रविः शत्रुः, जीवस्य विगतकुजाः सर्वे मित्राणि कुजः शत्रुः, शुक्रस्य विगतचन्द्रार्काः सर्वे मित्राणि-चन्द्रार्कौ तस्य शत्रुः, शनैश्चरस्य विगतांगारकसूर्यचन्द्राः सर्वे मित्राणि चन्द्रार्कभौमास्तस्य शत्रवः एतत्केषांचिदाचार्याणां मतम् ।। १।।

बृहस्पति, बृहस्पति-बुध, शुक्र-बुध, रविवर्जित सब ग्रह, मंगलवर्जित सब ग्रह, रवि-चन्द्रवर्जित सब ग्रह, तथा मंगल-चन्द्र-रविवर्जित शेष ग्रह-ये क्रम से सूर्य आदि ग्रहों के मित्र समझना। मित्र से अतिरिक्त ग्रहों को शत्रु समझना, ऐसा यवनादि अन्य आचार्यों का मत है। । १ । ।

यवनोक्त मैत्री चक्र-

ग्रह	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	गु.	गु.बु.	शु. बु.	चं.मं.गु. शु. श.	चं.सू.बु. शु. श.	मं. बु. गु. श.	बु. गु. शु.
शत्रु	चं.मं.बु. शु. श.	सू. मं. शु. श.	सू. चं. गु. श.	सू.	मं.	सू. चं.	मं. सू. चं.

सत्योक्त नैसर्गिक. मित्रामित्र-

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ।।२।।
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा
सौम्यार्की सुहृदौ समौ बुधगुरू शुक्रस्य शेषावरी
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरेस्तथान्येऽरय-
स्तत्काले च दशाऽयबन्धुसहजस्वाऽन्त्येषु मित्रं स्थितः ।।३।।

सं० टी०- अथ सत्यमतमंगीकुर्वन् मित्रादिविभागं सर्वग्रहाणां तात्कालिकं मित्रामित्रं चाह। रवेर्मन्दसितौ शत्रू, बुधः समः, शेषा ग्रहाः चन्द्राङ्गारकजीवाः रवेर्मित्राणि एवमादित्यस्य। अथ चन्द्रस्य तीक्ष्णां-शुरित्यादि। शीतगोश्चन्द्रस्यार्कबुधौ मित्रे, शेषा भौमजीवशुक्रसौरा अस्य समाः मध्यस्था इत्यर्थः। एवं चन्द्रस्य। अथाङ्गारकस्य जीवेन्दूष्णकरा इति कुजस्य भौमस्य जीवेन्दूष्णकरा गुरुचन्द्रसूर्या मित्राणि, ज्ञो बुधः शत्रुः, सितार्की शुक्रमन्दौ समौ मध्यस्थौ। एवमंगारकस्य। अथ बुधस्य मित्रे सूर्यसिताविति। बुधस्यादित्यशुक्रौ मित्रे, हिमगुश्चन्द्रः शत्रुः, समाश्चापरे भौमजीवशनैश्चराः बुधस्य समा मध्यस्थाः एव बुधस्य।।२-३।।

अथ गुरोः सूरेरिति। सूरेर्बृहस्पतेः सौम्यसितौ बुधशुक्रो शत्रू, रविसुतः शनैश्चरो मध्यस्थः अपरे तु मित्राणि चन्द्रांगारकार्का गुरोर्मि-त्राणि एवं जीवस्य। अथ शुक्रस्य सौम्यकीर्ति शुक्रस्य बुधसौरी मित्रे समौ कुजगुरू भौमजीवौ मध्यस्थौ, शेषावर्कचन्द्रावरी एवं शुक्रस्य। अथ सौरस्य। शुक्रज्ञाविति शनैः शुक्रबुधौ मित्रे जीवः समः अन्ये चन्द्रार्कभौमा

अरयः। एवं सौरस्य। नैसर्गिकमित्रामित्रविभागमुक्त्वा तात्कालिकमाह तत्काले चेति। इष्टकाले यस्मिन्स्थाने ग्रहः स्थितस्तस्माद्दशमस्थाने एकादशे चतुर्थे तृतीये द्वितीये अन्ये द्वादशे यो ग्रहस्थितः स तात्कालिकमित्रं भवति।।३।।

सूर्य के-शनि-शुक्र शत्रु, बुध सम और शेष (चन्द्रमा-मंगल-बृहस्पति) ये मित्र हैं। चन्द्रमा के सूर्य-बुध मित्र तथा शेष सब ग्रह सम हैं (चन्द्रमा को नैसर्गिक शत्रु नहीं है), मंगल के बृहस्पति-चन्द्रमा-सूर्य मित्र, बुध-शत्रु और शुक्र-शनि सम हैं। बुध के-सूर्य- शुक्र मित्र, बुध-शत्रु और शुक्र-शनि सम हैं। बुध के-सूर्य-शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु और शेष ग्रह (मंगल-बृहस्पति-शनि) सम है। बृहस्पति के-बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम और बाकी (सूर्य चन्द्रमा-मंगल) ग्रह मित्र हैं। शुक्र के-बुध-शनि मित्र, मंगल बृहस्पति सम और शेष (सूर्य-चन्द्रमा) शत्रु हैं। शनि के-शुक्र बुध मित्र, बृहस्पति सम और अन्य (सूर्य-चन्द्रमा-मंगल) ये शत्रु हैं।

सूर्य आदि सब ग्रह तत्काल में अपने-अपने आश्रित स्थान से परस्पर २।१२, ३।११, ४।१० में स्थित होने से परस्पर मित्र होते हैं। अर्थात् अन्य स्थान में शत्रु होते हैं।।२-३।।

विशेष- ग्रहों के तात्कालिक शत्रु के सम्बन्ध में अन्य प्रकाशित पुस्तकों का यह श्लोक-

'मूलत्रिकोणषष्ठत्रिकोणनिधनैकराशिसप्तमगाः ।
एकैकस्य तथा सम्भवन्ति तात्कालिका रिपवः।।;

क्षेपक जान पड़ता है, कारण 'मूल-त्रिकोण में' ऐसा पाठ आचार्य को अभिप्रेत नहीं। एवं बाकी पाठ पूर्व श्लोक में ही स्पष्ट हो चुका है।

ग्रहों के नैसर्गिक मित्र, सम, शत्रु-

ग्रह	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं. मं. गु.	सू. बु.	सू. चं. गु.	सू. शु.	सू. चं. मं.	बु. श.	बु. शु.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.
शत्रु	शु. श.	X	बु.	चं.	बु. शु.	सू. चं.	सू. चं. मं.

मित्रामित्र से पञ्चधामैत्री कथन-

मित्रमुदासीनोऽरिर्व्याख्याता ये निसर्गभावेन।
तेऽधिसुहृन्मित्रसमास्तत्कालमुपस्थिताश्चिन्त्याः।।४।।

सं० टी०- मित्रस्थानानां प्रयोजनमाह। दर्शितेषु मित्रस्थानेषु दशादिकेषु मित्रमवस्थितमधिमित्रं भवति, मध्यमस्थं मित्रं भवति, शत्रुव्यवस्थितो मध्यस्थो भवति, अथदिव मित्रस्थानव्यतिरिक्तानि स्थानानि शत्रुस्थानानि भवन्ति। तानि च प्रथमपञ्चाष्टषट्सप्तमनवमानि तेषु स्थानेषु ग्रहस्य नैसर्गिकः शत्रुर्व्यवस्थिताऽधिशत्रुर्भवति। मध्यस्थो व्यवस्थितः शत्रुर्भवति मित्रमवस्थितः समो भवति।।४।।

नैसर्गिक मित्र-सम-शत्रु जो कहे गये हैं, वे तात्कालिक मित्र हों तो क्रम से अधिमित्र, मित्र और सम होते हैं। अर्थात् यदि निसर्ग और तात्कालिक, दोनों प्रकार से मित्र हों तो वह ग्रह अधिमित्र, एक जगह मित्र और एक जगह सम हो तो मित्र, एक

जगह मित्र और एक जगह शत्रु हो तो सम, एक स्थान में सम और दूसरे में शत्रु हो तो शत्रु और यदि दोनों प्रकार से शत्रु हो तो अधिशत्रु होता है।।४।।

विशेष- इस प्रकार मित्रादि का विचारकर जातक का फल कहना चाहिये। कहा भी है-

तत्काले च निसर्गे च मित्रं चेदमित्रंकम् ।
मित्रं मित्रसमत्वे तु शत्रुः शत्रुसमत्वके ।।१।।
समो मित्ररिपुत्वे तु शत्रुत्वे त्वधिशत्रुता ।
एवं विविच्य दैवज्ञो जातकस्य फलं वदेत् ।।२।।

मूलत्रिकोणषष्ठत्रिकोणनिधनैकराशिसप्तमगाः ।
एकैकस्य यथा सम्भवन्ति तात्कालिका रिपवः ।।५।।

सं० टी०- मूलत्रिकोणेति। अर्कादीनां मूलत्रिकोणासि *'सिंह-वृषाजप्रमदाकार्मुकभृत्तौलिकुम्भधराः'* इति। षष्ठं त्रिकोणं नवपञ्चमं निधनमष्टमं एकराशिः सप्तम एषु स्थानेषु स्थितास्तात्कालिका रिपवो भवन्ति।।५।।

ग्रहों के अपने-अपने मूल त्रिकोण में तथा ग्रहों से ६, ५, ९, ८, ७ एवं (अपने साथ) में रहने वाला ग्रह तात्कालिक शत्रु होता है।।५।।

इति लघुजातके ग्रहमैत्रीविवेकाध्यायः।।३।।

*

अथ ग्रहस्वरूपाध्यायः ॥४॥

सूर्यादि ग्रहों के स्वरूप-

चतुरस्त्रो नात्युच्चस्तनुकेशः पैत्तिकोऽस्थिसारश्च ।
शूरो मधुपिंगाक्षो रक्तश्यामः पृथुश्चार्कः ॥१॥

सं० टी०-अथ ग्रहाणां स्वरूपमाह। चतुरस्त्रो न्यग्रोधमण्डलाकारः यावदेव प्रसारितभुजद्वयस्य विस्तीर्णत्वं तावदेवास्य दैर्घ्यम् नात्युच्चः किञ्चिदुच्च एव, तनुकेशी विरलकेशः, पैत्तिकः पित्तप्रकृतिः, अस्थिसारो दृढास्थिः, शूरः संग्रामप्रियः, मधुपिंगाक्षः ईषत्पिंगलोचनः, रक्तश्यामो लोहितश्यामः रक्तश्चासौ श्यामश्च, पृथुर्विस्तीर्णशरीरः, एवंविधोऽर्कः ।१।

सूर्य-चतुरस्त्र आकार (लम्बाई और चौड़ाई में बराबर), कुछ ऊँचे शरीरवाला परन्तु अति ऊँचा नहीं, थोड़े केशवाला, पित्ताधिक, दृढ़ अस्थिवाला, शूरवीर, मधु के समान पिंगल दृष्टि, लाल और कृष्णवर्ण से युक्त तथा स्थूलकाय है।।१।।

चन्द्रस्वरूपम्-

स्वच्छः प्राज्ञो गौरश्चपलः कफवातिको रुधिरसारः।
मृदुवाग् घृणी प्रियसखस्तनुवृत्तश्चन्द्रमाः प्रांशुः ॥२॥

सं० टी०- स्वच्छो दर्शनीयः, प्राज्ञो मेधावी, गौरः श्वेतप्रायः, चपलः क्रियास्ववस्थितः कफवातिको वातश्लेष्मप्रकृतिः, रुधिरसारो रक्ताधिकमृदुवाक्कोमलभाषी, घृणी दयावान्, प्रियसखो मित्रप्रियः, तनुवृत्तः कृशवर्तुलांगः, प्रांशुरुच्चः एवंविधश्चन्द्रमाः।।२।।

चन्द्रमा-निर्मल कान्तिवाला, बुद्धिमान्, गौरवर्ण, चपल, कफ-वात-प्रकृति, अधिक रुधिरवाला, मृदुभाषी, दयालु, मित्रों पर प्रीति करनेवाला, कृश तथा गोल आकृति तथा उन्नत शरीर है।२

भौमस्वरूपम्-

हिंस्रो ह्रस्वस्तरुणः पिंगाक्षः पैत्तिको दुराधर्षः।
चपलः सरक्तगौरो मज्जासारश्च माहेयः।।३।।

सं० टी०-हिंस्रो दुष्टो, ह्रस्वोऽल्पोच्छायः तरुणः सदैव तरुणाकारः पिङ्गाक्षः कपिलनेत्र, पैत्तिकः पित्तप्रकृतिः, दुराधर्षः दुराचारी, चपलोऽनेकमतिः, सरक्तगौरः पद्मपत्राग्रवर्णः मज्जासारो मज्जाधिकः एवंविधो माहेयोऽङ्गारकः।।३।।

मंगल-हिंसायुक्त, लघु शरीर, तरुण, पिंगलनेत्र, पित्तप्रकृति, दुराचारी, चञ्चल, लाल तथा गौरवर्ण एवं अधिकमज्जावाला है।३।

बुधस्वरूपम् -

मध्यमरूपः प्रियवाग् दूर्वाश्यामः शिराततो निपुणः।
त्वक्सारस्त्रिस्थूणः सततं हृष्टस्तु चन्द्रसुतः।।४।।

सं० टी०-अथ बुधस्याह। मध्यमरूपो न दर्शनीयः नाप्यदर्शनीयः, प्रियवाक् अभिमतवक्ता, दूर्वाश्यामः, शाद्वलवर्णाभः, शिराततो दृश्यस्नायुः, निपुणः क्रियासु सूक्ष्मदृक् त्वक्सारः स्थूलत्वक् त्रिस्थूणो वातपित्तकफ-प्रकृतिः, सततं हृष्टो नित्यं हर्षितः एवंविधो बुधः।।४।।

बुध-साधारण रूपवाला, मृदुवक्ता, दूर्वादल के समान श्यामल गात, विस्तृत स्नायु, चतुर, स्थूलचर्मवाला, वात-पित्त-कफ प्रकृति, सर्वदा आनन्दित रहनेवाला और चन्द्रमा का पुत्र है।।४।।

गुरुस्वरूपम्-

मधुनिभनयनो मतिमानुपचितमांसः कफात्मको गौरः।
ईषत्पिङ्गलकेशो मेदःसारो गुरुर्दीर्घः।।५।।

सं० टी०- बृहस्पतेराह। मधुनिभनयनः ईषत्कातरलोचनः, मतिमान् बुद्धिमान्, उपचितमांसः, स्थूलदेहः, कफात्मकः श्लेष्मप्रकृतिः, गौरः श्वेतप्रायः, ईषत्पिंगलकेशः, मेदःसारो मेदोऽधिकः, अदीर्घः ह्रस्वः एवंविधो गुरुः।।५।।

बृहस्पति-पिङ्गलवर्ण दृष्टिवाला, बुद्धिमान्, पुष्ट मांस वाला, कफप्रकृति, गौरवर्ण, पिङ्गलवर्ण के बालोंवाला, अधिक मेदा से युक्त तथा दीर्घ शरीरवाला है।। ५ ।।

शुक्रस्वरूपम्-

श्यामो विकृष्टपर्वा कुटिलासितमूर्द्धजः सुखी कान्तः।
कफवातिको मधुरवाग्भृगुपुत्रः शुक्रसारश्च ।।६।।

सं० टी०-श्यामः किंचित्कृष्णाङ्गः, विकृष्टपर्वा विरलशरीरसन्धिः, कुटिलासितमूर्द्धजः कुञ्चितकृष्णकेशः, सुखी भोगी, कान्तो दर्शनीयः कफवातिको वातश्लेष्मप्रकृतिः मधुरवाक्कोमलभाषी, शुक्रसारः शुक्राऽधिकः एवंविधः शुक्रः।।६।।

शुक्र-श्यामवर्ण, विरलशरीरसन्धि वाला, काले घुँघराले केशवाला, सुखी, सुन्दर, देखने योग्य, कफ-वायु प्रकृति, मधुरभाषी तथा अधिक वीर्ययुक्त है।। ६ ।।

शनिस्वरूपम्-

कृशदीर्घः पिंगाक्षः कृष्णः पिशुनोऽलसोऽनिलप्रकृतिः।
स्थूलनखदन्तरोमा शनैश्चरो स्नायुसारश्च ।।७।।

सं० टी०-अथ शनेश्चाह। कृशदीर्घो दुर्बलोन्नतः, पिंगाक्षः कपिलनेत्रः, कृष्णः प्रसिद्धः पिशुनः पररन्ध्रसूचकः अलसो मन्थरगामी, अनिलप्रकृतिः वातात्मक; स्थूलनखदन्तरोमास्नायुसारः एवंविधः शनैश्चरः।७।

शनि-दुबला और लम्बा शरीर, कपिलनेत्र, काला, परनिन्दक, आलसी, वात प्रकृति, मोटे-मोटे नख तथा दाँतवाला, अधिक रोमयुक्त तथा स्नायुसार है।।७।।

प्रयोजन-

एते ग्रहा बलिष्ठाः प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम् ।
कुर्युर्देहं नियतं बहवश्च समागता मिश्रम् ।।८।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।८।।

जन्म समय में जो ग्रह प्रबल रहता है, उसी ग्रह के समान जन्म लेने वाले बालक का रूप, बल, बुद्धि, गुण आदि होते हैं। यदि बहुत से ग्रह बली हो तो सब के गुण, रूप मिश्रित होते हैं।८।

इति लघुजातके ग्रहस्वरूपाध्यायः।।४।।

*

अथ गर्भाधानाध्यायः।।५।।

आधानलग्न से संभोग ज्ञान-

आधानेऽस्तगृहं यत्तच्छीलो मैथुने पुमान् भवति ।
सायासमसद्युतवीक्षिते विदग्धं शुभैरस्ते ।।१।।

सं० टी०- अथाधानं व्याख्यास्यामः। तत्रादौ मैथुनकृतज्ञानमाह। आधानं बीजक्षेपः तत्र आधाने प्रश्नकाले च यो लग्नराशिस्तस्माद्यो राशिः सप्तमः तन्नामा जन्तुर्येन प्रकारेण मैथुनं करोति तेन प्रकारेण युक्तो मैथुनकारी पुमानिति वक्तव्यम्। तस्मिन्सप्तमे स्थाने पापग्रहैर्युते दृष्टे वा तन्मैथुनं सायासं श्रमयुक्तमासीत्। तस्मिन्नेव सप्तमे स्थाने शुभैर्युते दृष्टे वा विदग्धं श्रमरहितं च तन्मैथुनमासीत्। मिश्रैर्युते दृष्टे वोभयरूपं सामान्यात्। न केनचिद्युते न दृष्टे वा न सायासं नापि विदग्धमिति।।१।।

गर्भाधान कालिक कुण्डली में लग्न से सातवें भाव में जो राशि रहे उसी के अनुसार (अर्थात् जो राशि जिस प्रकार रति संभोग करती है तदनुकूल) पुरुष द्वारा मैथुनक्रिया समझना। यदि सप्तम भाव पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो मैथुन को श्रम-कलहयुक्त और यदि शुभग्रह से युत-दृष्ट हो तो हास्य-विलासपूर्वक मैथुनक्रिया सम्पन्न हुई है, ऐसा समझना चाहिये।।१।।

आधानलग्न से दीप का ज्ञान-

सौरांशेऽब्जांशे वा चन्द्रः सौरान्वितोऽथ हिबुके वा।
शान्तो दीपो जन्मन्याधाने चेन्न रविदृष्टः।।२।।

सं० टी०- आधानकाले जन्मकाले प्रश्नकाले वा दीपस्याभावज्ञानमाहरौरांशे यत्र तत्र राशौ मकरकुम्भयोरन्यतरनवांशस्थे चन्द्रमसि तमस्यन्धकारे आधानं प्रसवश्च वक्तव्यः। अब्जांशे वा कर्कटमीनयोरन्यतमनवांशस्थे वा चन्द्रमसि तमस्येव। अथवा यत्र तत्रावस्थितश्चन्द्रमाः शनैश्चरयुतस्तदा तमस्येव अथवा लग्नाच्चन्द्रश्चतुर्थो भवति तदाऽन्धकार एवं शान्तो दीपः प्रशान्त इत्यर्थः। एतदाधानलग्नाज्जन्मलग्नात् प्रश्नलग्नाच्च विचारणीयम्। अत्र सर्वयोगेषु यद्यर्कयुक्तश्चन्द्रमा भवति तदाऽन्धकाराभावः।।२।।

गर्भाधान अथवा जन्म समय में यदि चन्द्रमा शनि के अथवा जलचर (कर्क, मीन, मकरोत्तरार्ध) राशि के नवांश में हो अथवा चन्द्रमा लग्न से चतुर्थ स्थान में शनि से युक्त हो तो दीप का अभाव, यदि उस पर सूर्य की दृष्टि न हो तो अर्थात् यदि सूर्य की दृष्टि हो तो दीपक प्रज्वलित समझना चाहिये।।२।।

गर्भाधान से जन्मकाल का विचार-

चन्द्रो यावत्संख्ये द्वादशभागे निषेकसमये स्यात्।
तस्मात् तावति राशौ जन्मेन्दौ सम्भवे मासि।।३।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।३।।

गर्भाधान समय में चन्द्रमा जितने संख्यक द्वादशांश में हो उससे क्रम गणना द्वारा उतनी ही संख्यक राशि में प्रसवसम्भव मास में चन्द्रमा के जाने पर जन्म होता है।।३।।

विशेष- गर्भाधान काल से ९ वें या १० वें मास में प्रसव सम्भव कहा गया है।

प्रसवसम्भव में विशेष-

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे
यदि भवति निषेकः सूतिमब्दत्रयेण।
शशिनि तु विधिरेष द्वादशेऽब्दे प्रकुर्या-
न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या।।४।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।४।।

लग्न में शनि का नवांश हो और लग्न से सप्तम स्थान में शनि हो तो ऐसे योग में गर्भाधान हो तो ३ वर्ष पर प्रसव होता है। यदि इस प्रकार का योग चन्द्रमा से हो जाय (अर्थात् चन्द्र नवांश लग्न में हो और चन्द्रमा लग्न से सप्तम में हो) तो गर्भाधान से १२ वर्ष पर प्रसव होता है। एवं यदि इस प्रकार का योग जन्मकालिक कुण्डली में हो तो भी अन्वय व्यतिरेक से त्रिवर्षीय और द्वादशवर्षीय गर्भ से जन्म समझना।।४।।

गर्भाधानकालिक अशुभयोग-

यमवक्रौ द्यूनेऽर्कात्पुंसो रोगप्रदौ स्त्रियश्चन्द्रात्।
तन्मध्यगयोर्मृत्युस्तदेकयुतदृष्टयोश्चैवम् ।।५।।

सं० टी०- आधानजन्ममध्ये पित्रोः शुभाऽशुभज्ञानमाह। आधानकाले प्रश्नकाले वा अर्कक्रान्तराशितः सप्तमे स्थाने यदि शनिभौमौ भवतस्तदा प्रसवादर्वाक् पुरुषस्य रोगदौ व्याधिकरावित्यर्थः। एवं चन्द्रात्सप्तमे राशौ शनिभौमौ भवतस्तदा स्त्रियो रोगकरौ भवतः। तन्मध्यगयोः मृत्युः। तदिति शनैश्चराङ्गारकौ तयोर्मध्यस्थितयोश्चन्द्रार्कयोर्यथासंख्येन स्त्रीपुंसोर्मृत्युकरौ भवतः। तत्रादित्याद्यदा शनिभौमयोरेको द्वादशस्थो द्वितीयो द्वितीयस्थौ भवति तदा प्रसवादर्वाक् पुरुषो म्रियते। अथ चन्द्रादेको द्वादशस्थो द्वितीयो द्वितीयस्थो भवति तदा प्रसवादर्वाक् स्त्री म्रियत इत्यर्थः। तस्मिन्नपि राशौ शनिभौमाभ्यामेकेन भुक्तांशकानतिक्रम्य द्वितीयेन भुज्यमानमप्राप्य यद्यर्कचन्द्रयोरन्यतरस्यावस्थानं तदाप्यसौ मध्यगत एव भवति। तदापि स्त्रीपुंसयोरेकतरस्य मृत्युर्भवति। तदेकयुतदृष्टयोश्चैवमिति। तयोः शनिभौमयोर्मध्यादेकेन भानुर्यदा युक्तं परेण दृश्यते तदा प्रसवादर्वाक् पुंसो मरणं भवति। तयोरेकेन युक्तं चन्द्रमस यदाऽपरः पश्यति तदा प्रसवादर्वाक् स्त्री म्रियत इति॥५॥

गर्भाधानकाल में सूर्य से सप्तम स्थान में शनि और मंगल हो तो ये दोनों पुरुष के लिए रोगप्रद होते हैं। और यदि यही दोनों (शनि, मंगल) चन्द्रमा से सप्तम में हों तो स्त्री के लिये रोगप्रद होते हैं। तथा इनके (शनि, मंगल) बीच में सूर्य हो तो पुरुष की और चन्द्र हो तो स्त्री की मृत्यु होती है। एवं यदि सूर्य इनमें से एक से युत और एक से दृष्ट हो तो पुरुष की एवं यदि इस प्रकार चन्द्रमा हो तो स्त्री के लिये अशुभकारक समझना।।५।।

विशेष-यहाँ रवि और चन्द्रमा से १५ अंशविधि मात्र आगे और पीछे यदि शनि, मंगल हो तो रवि-चन्द्र को मध्यस्थ मानना चाहिये। इससे अधिक अन्तर पर शनि, मंगल के रहने से मध्यस्थ होने पर भी फल का प्रभाव समझना।

आधान से १० मासों में गर्भ के रूप और फल-

कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः ।
मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम् ।।६।।
अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम् ।
कलुषैः पीडा पतनं निपीडितैर्निर्मलैः पुष्टिः ।।७।।

सं० टी०- आधानमासादारभ्य माससप्तकाधिपतीन् ग्रहानाह । गर्भः प्रथमे मासे कललरूपो भवति शुक्रशोणितमिश्रीभूतः तत्र गर्भस्य प्रथमे मासे शुक्रोऽधिपतिः। द्वितीये शुक्रशोणितस्य घनत्वं भवति तत्र कुजोऽधिपतिः। तृतीये मासे गर्भस्य हस्ताद्यवयवोत्पत्तिर्भवति तत्र जीवोऽधिपतिः। चतुर्थे मासि गर्भस्यास्थिसम्भवो भवति तत्राऽर्कोऽधिपतिः। पंचमे मासि त्वक् चर्मसम्भवो भवति तत्राऽधिपतिश्चन्द्रः। षष्ठे रोमाणि जायन्ते तत्र शनिरधिपतिः। सप्तमे स्मृतिसमुद्भवश्चैतन्यं भवति तत्र बुधोऽधिपतिः। अतः क्रमेण मासत्रये गर्भस्य लक्षणं मासाधिपतीन् मासाधिपतिप्रयोजनमाह। तत्राष्टमे मासि गर्भो मातुर्भुक्तमश्नाति तत्र तस्याधानलग्नस्य अधिपतिः स्वामी। नवमे मासि तस्य गर्भस्योद्वेगो भवति तत्र चन्द्रोऽधिपतिः। दशमे मासि प्रसवो भवति तत्राऽर्कः स्वामी। प्रयोजनमाह। कलुषैरिति। आधानकाले यः कलुषो विवर्णस्तस्य सम्बंधिनि मासि गर्भस्य पीडा वक्तव्या। निपीडितैरिति। ग्रहेणान्येन ग्रहयुद्धे विजिते शिखिशिखाध्वस्ते उल्काहते वा ग्रहे तस्मिन्मासि गर्भपतनं वक्तव्यम्। निर्मलैः रश्मिसंयुक्तैर्गर्भस्य पुष्टिर्वक्तव्या। ६-७।

गर्भाधान से प्रथम में कलल (शुक्र-शोणित सम्मिश्र), दूसरे में घन (पिण्ड), तीसरे में अंकुर (हस्त-पादादि अवयव), चौथे में अस्थि, पाँचवें में चर्म, छठे में रोम (लोम), सातवें में चैतन्य होता है। एवं इन सातों के स्वामी क्रम से- शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि और बुध हैं। इसके बाद आठवें मास में अशन

(माता के द्वारा भुक्त रसों का पान), नवें मास में उद्वेग (गर्भ से निकलने की उत्कण्ठा) और दसवें मास में प्रसव होता है, और इन तीनों मासों के स्वामी क्रम से गर्भाधानकालिक लग्नेश, चन्द्रमा और सूर्य समझना। गर्भाधान काल में जिस मास का स्वामी कलुषित (शत्रुयुत् दृष्ट, नीचस्थित आदि) हो तो उस मास में पीड़ा और जिसका स्वामी निपीड़ित (युद्ध में पराजित) हो, उस मास में गर्भ का पतन एवं जिस मास का स्वामी निर्मल (स्वच्छ रश्मि) हो उस में गर्भ में सुख (पुष्टि) समझना।।६-७।।

आधानलग्न से गर्भ का ज्ञान-

बलयुक्तौ स्वगृहांशेष्वर्कसितावुपचयर्क्षगौ पुंसाम्।
स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसम्भवो भवति।।८।।
लग्ने बलिनि गुरौ वा नवपञ्चमसंस्थितेऽपि वा भवति।
योगा हतबीजानामफला वीणेव बधिराणाम्।।६।।

सं० टी०-गर्भसम्भवासम्भवज्ञानमाह-यत्र कुत्र राशौ स्वराश्यंशकस्थावादित्यशुक्रौ बलयुक्तौ पुरुषस्य जन्मलग्नाज्जन्मराशेर्वा उपचयस्थाने भवतो यदा तदा गर्भस्य सम्भवो वक्तव्यः। अङ्गारकचन्द्रौ स्वराशिनवांशस्थौ भवतः स्त्रियश्चोपचयर्क्षगौ भवतो यदा तदाऽपि गर्भसम्भवो भवति। गर्भसम्भवयोगनिष्फलत्वं चाह। अथवा लग्नपंचमनवमानामेकस्मिन् स्थाने बलवान् बृहस्पतिर्भवति तदा गर्भसम्भवो वाच्यः। अथवाऽऽदित्यचन्द्रशुक्राङ्गारकाः सर्वे एवं यदि स्वभागगाः स्त्रीपुंसोश्चोपचयस्था भवन्ति तदाऽपि गर्भसम्भवो भवति। यदुक्तं च वराहेन। रवीन्दुशुक्रावनिजैरिति। योगा हतबीजीनां मध्ये स्त्रीपुंसोः अन्यतमो हतबीजो भवति तस्मिन् हतबीजे इमे योगा निष्फला ज्ञेयाः किमिवेत्याह-यथा वीणा बधिराणां वाद्यमाना श्रुतिसुखं न जनयति तथैवेऽपि योगाः। षण्ढानां संयोगानामपि सम्भवं न कुर्वन्ति।।८-९।।

गर्भाधान समय में सूर्य और शुक्र बलवान् होकर अपनी राशि और नवांश में स्थित हो, पुरुष की राशि से उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान में हो अथवा मङ्गल और चन्द्रमा स्वराशिनवांशस्थित स्त्री की जन्म राशि से उपचय स्थान में हो तो गर्भ की स्थिति समझना। अथवा बलवान् बृहस्पति लग्न, नवम या पञ्चम में हो तो भी गर्भ की स्थिति समझनी चाहिये। ये तीनों योग नपुंसक के लिए ही निष्फल हो सकते हैं-जैसे बधिरों के लिए वीणा।। ८-९।।

गर्भ में पुत्र, कन्या का ज्ञान-

विषमर्क्षे विषमांशे संस्थिताश्च गुरुशशाङ्कलग्नार्काः।
पुञ्जन्मकराः समभेषु योषितां समनवांशगताः।।१०।।

सं० टी०-अथ गर्भसम्भवज्ञानानन्तरं गर्भज्ञानमाह। विषमस्थैर्मेष-मिथुनादिस्थैर्यथासम्भवं सर्वैरेव बृहस्पतिचन्द्रार्कलग्नैः न केवलं, यावत् प्रदर्शितराशिसम्बन्धिनवांशकगतैर्ग्रहैर्गर्भे पुरुषसम्भवो वक्तव्यः। समभेष्विति। एते बृहस्पतिचन्द्रलग्नार्का यदि समराशिषु वृषादिषु स्थितास्तदा स्त्रीजन्म कथनीयम्। न केवलं यावत्तत्सम्बन्धिनवांशकगता यदा भवेयुः तदाऽपि योषितां जन्मकरा भवन्ति। अथ यथाऽभिहिता उभयविकल्पे यत्रैव बहवः स्थितास्तल्लिङ्गासम्भवनिर्देशः साम्ये च बलाधिक्यवशात् उक्तं च बृहज्जातके *'ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः पुंजन्म प्रवदेत् समांशसहितैर्युग्मेषु तैर्योषितः'*।।इति।।१०।।

बृहस्पति, चन्द्रमा, लग्न और सूर्य-ये विषमराशि और विषम नवांश में हो तो पुरुष (पुत्र) का जन्म तथा ये ही चारों यदि समराशि समनवांश में हो तो स्त्री (कन्या) का जन्म कहना।।१०।।

पुत्र, कन्या, यमल योग-

बलिनो विषमेऽर्कगुरू नरं स्त्रियं समगृहे कुजेन्दुसिताः।
यमलं द्विशरीरांशेष्विन्दुजदृष्टाः स्वपक्षसमम्।।११।।

सं० टी० - पुनरपि गर्भलिङ्गज्ञान यमलसम्भवज्ञानं चाह। विषमराशिगतौ यथासम्भवमादित्यबृहस्पती बलयुक्तौ भवतस्तदा नरो गर्भस्थो वाच्यः। समराशिष्वेवं यथासम्भवं सर्वे एव कुजचन्द्रशुक्रा बलिनो यदा भवन्ति तदा स्त्रीगर्भश्चेति वक्तव्यम्। यमलौ द्विशरीरांशेष्विति। द्विशरीरराशिनवांशकस्था आदित्यगुरुकुजेन्दुसिता बुधदृष्टाः यमलौ स्वपक्षे कुर्वन्ति। एतदुक्तं भवति। चत्वारो द्विःस्वभावा मिथुनमीन-कन्याधन्विनः। तत्र मिथुनधन्विनौ पुरुषांशकौ कन्यामीनौ स्त्र्यंशकौ तेन यथासम्भवं मिथुनधन्वंशगतावादित्यगुरू यदि बुधेन यत्र तत्रावस्थितेन दृश्येते तदा यमलौ द्वौ पुरुषौ वाच्यौ एवं यथासम्भवं कन्यामीनांशगताः कुजेन्दुसिता यत्र तत्रावस्थितेन बुधेन दृश्यन्ते तदा यमले द्वे कन्ये वाच्ये। अथ दर्शितग्रहपञ्चकमपि द्विःस्वभावराशिसंस्थं यथा बुधः पश्यति तदा एकः पुरुषो वक्तव्य एका च कन्या वक्तव्या।११।

सूर्य और बृहस्पति, ये दोनों बली होकर विषम राशि में हों तो पुत्र का और यदि मङ्गल, चन्द्रमा, शुक्र, ये बली होकर सम राशि में हों तो कन्या जन्मकारक होते हैं। तथा यदि ये ही योगकारक ग्रह द्विस्वभाव राशि नवांश में हो और उस पर बुध की दृष्टि हो तो अपने पक्ष में यमल (दो बच्चों) का जन्म समझना।।११।।

विशेष- यह कि यदि पुरुष राशि द्विस्वभाव (मिथुन, धनु) के नवांश में हो तो दो पुत्र, यदि स्त्री राशि द्विस्वभाव (कन्या, मीन) के नवांश में हो तो दो कन्याएँ एवं यदि एक पुरुष राशि नवांश में और एक स्त्री राशि नवांश में हो तो गर्भ में एक लड़का और एक लड़की समझना।

विशेष-

लग्नाद्विषमोपगतः शनैश्चरः पुत्रजन्मदो भवति।
निगदितयोगबलाबलमवलोक्य विनिश्चयो वाच्यः।।१२।।

सं० टी०-पुंजन्मयोगान्तर स्त्रीपुरुषयोगयोर्द्वयोरपि सम्भवे सति निश्चयो वाच्य इत्याह। लग्नं भुक्त्वा विषमर्क्षगः सौरो लग्नात् तृतीय पञ्चमसप्तमनवमैकादशस्थानानामन्यतमस्थानस्थो यदा भवति तदा पुत्रजन्मदो भवति। एतान्योगान्दृष्ट्वा जन्मसमये प्रश्नकाले वा नरोत्पत्तिर्विज्ञेया। निगदितेत्यादि-यत्र पुरुषयोगसम्भवः स्त्रीजन्मसम्भवश्च तत्र यो योगो बलवद्ग्रहाभिनिवृत्तस्तद्वशादेक्तमस्य सम्भवो वक्तव्यः। १२।

एवं यदि शनि लग्न से विषम (१, ३, ५ आदि) स्थान में हो तो पुत्र का जन्म कहना। ऊपर जो योग सब कहे गये हैं उनमें योगकारक ग्रहों के बलाबल देखकर निश्चय करना चाहिये।।१२।।

इति लघुजातके गर्भाधानाध्यायः।।५।।

अथ सूतिकाध्यायः ।।६।।

ग्रहों के सत्त्वादिगुण-

गुरुशशिरवयः सत्त्वं रजः सितज्ञौ तमोऽर्कसुतभौमौ।
एतेऽन्तरात्मनि स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति।।१।।

सं० टी०-ग्रहाणां सात्त्विकादिविभागमाह। बृहस्पतिचन्द्रादित्याः सात्त्विकाः बुधशुक्रौ राजसौ शनैश्चराङ्गारकौ तामसौ एते ग्रहाः जन्तोः स्वामात्मीयां प्रकृतिं प्रयच्छन्ति। पूर्वोक्तंविधिना त्रिंशांशे यस्य भास्करः तादृक् इति। ननु चन्द्रार्कयोः सात्त्विकत्वेन किं प्रयोजनमुच्यते तयोर्गुणमात्रमेव।।१।।

बृहस्पति-चन्द्रमा-सूर्य ये सत्त्वगुणी, शुक्र-बुध रजोगुणी तथा शनि-मंगल ये दोनों तमोगुणी हैं। ये जातक के अन्तःकरण में अपनी प्रकृति (गुण, आकृति आदि) देते हैं।।१।

जातक के गुण-वर्णादि-

सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृक्।
बलिनः सदृशी मूर्तिर्बुध्वा वा जातिकुलदेशान्।।२।।

पूर्वविलग्ने यादृक् नव भागस्तादृशी भवति मूर्तिः ।
यो वा ग्रहो बलिष्ठस्तत्काले तादृशी वाच्या ।।३।।

सं० टी०- अथ सूतकाध्यायं व्याख्यास्यामस्तत्रादावेव जातस्य सात्त्विकराजसतामसत्वनिरूपणाय शरीराकारज्ञानमाह। यस्य जन्मकाले भास्कर आदित्यः सात्त्विकत्रिंशांशे व्यवस्थितस्तदा सात्त्विको जात इति वक्तव्यम्। एवं राजसादौ। बलिनः सदृशी मूर्तिरिरिति पुरुषस्य जन्मसमये यो ग्रहोऽतिबलवांस्तस्य सदृशी 'चतुरस्रो नात्युच्चः' इत्यादिप्रदर्शितमिति तस्य यथाविधमेव वक्तव्यं अथवा लग्ननवांशस्याधिपतेस्तुल्या मूर्ति-र्वक्तव्या। उक्तं च– 'लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वेति बुध्वा वा जातिकुलदेशानिति-पूर्वमूर्तिनिर्देशः। श्वपाकशबरनिषादा ज्ञातित एवं कृष्णा भवन्ति। तेषामेव निर्देशः। कस्मिन्कुले कोऽसौ जातो गौराणां कृष्णानां वा देशं च बुध्वा मूर्तिनिर्देशः। कस्मिंन्देशे कोऽयं जात इति यथा कर्णाटकाः सर्वे एवं कृष्णा भवन्ति। वैदेहाः सर्वे एवं श्यामाः। काश्मीराः सर्वे गौरा एव।।२-३।।

जन्म समय में सूर्य जिस ग्रह के त्रिंशांश में हो उसी ग्रह के सदृश जातक में भी सत्त्वादि (सत्त्व, रज, तम) गुण समझना। तथा जन्म समय जो ग्रह सबसे बली हो उसके समान अथवा प्रथम (जन्म लग्न) में जिस प्रकार गुणयुक्त ग्रह का नवांश हो उसके समान ही जातक का भी स्वरूपादि समझना। परञ्च जाति, कुल, देश का विचार कर तदनुसार फल का विचार करना चाहिये।२-३।

विशेष-यहाँ वर्ण, आकृति आदि का ज्ञान देश, कुल, जाति के अनुसार भी तारतम्य से समझना चाहिये। क्योंकि माता-पिता के रंग-रूप एवं देश (स्थान विशेष) का प्रभाव जातक पर निश्चित रूप से पड़ता ही है।

पिता के परोक्ष में जन्म-

चन्द्रे लग्नमपश्यति मध्ये वा शुक्रसौम्ययोश्चन्द्रे ।
जन्म परोक्षस्य पितुर्यमोदये वा कुजे वाऽस्ते ।।४।।

सं० टी०- जातस्य पितुः सन्निधानमसन्निधानं चाह। यस्य जन्मलग्नं चन्द्रो न पश्यति तस्य पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यं, शुक्रसौम्ययोर्मध्यगते चन्द्रे सति पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यम्। यस्य जन्मलग्नस्थः शनैश्चरो भवति तस्य पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यम्। यस्य लग्नात् भौमः सप्तमो भवति तस्यापि पितुः परोक्षे जन्म वक्तव्यम्। ।४। ।

चन्द्रमा लग्न को न देखता हो अथवा चन्द्रमा, बुध और शुक्र के बीच में हो या शनि लग्न में हो या मङ्गल सप्तम में हो तो इन योगों में पिता की अनुपस्थिति में बालक का जन्म कहना ।।४।।

परजात जन्मयोग-

पापयुतोऽर्कः सेन्दुः पश्यति होरां न चन्द्रमपि जीवः।
पश्यति सार्कं नेन्दुं यदि जीवो वा परजातः ।।५।।

सं० टी०- अथ परजातस्य ज्ञानमाह। चन्द्रार्कावेकराशिगतौ तत्र पापग्रहोऽङ्गारकः शनैश्चरो वा भवति तदा परजातो वक्तव्यः। अथवा चन्द्रे लग्नं बृहस्पतिर्नोभयं पश्यति न दृश्यते तदाऽपि परजातो वक्तव्यः। अथवाऽर्कचन्द्रावेकराशिगतौ जीवो न पश्यति तदाऽपि परजातो वक्तव्यः। ५।

सूर्य यदि पाप (शनि, मङ्गल) और चन्द्रमा से युक्त होकर लग्न को न देखता हो, अथवा पापयुक्त सूर्य चन्द्रमा को न देखें या चन्द्र से युक्त सूर्य हो और उसको बृहस्पति न देखता हो तो ऐसे योग में जन्म लेने वाले को परजात (अन्य से उत्पन्न) समझना। ५।

विशेष-इन कथित योगों में यदि बृहस्पति की दृष्टि हो तो जातक को परजात योग होने पर भी परजात नहीं समझना चाहिये।

सूतिका के गृह का द्वार-

द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगाद्ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात्।
दीपोऽर्कादुदयाद्वर्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ।। ६ ।।

सं० टी०-सूतिकागृहज्ञानं दीपज्ञानं चाह। 'प्राच्यादीशाः' इत्यादिना या दिक् यस्य ग्रहस्योक्ता तस्मिन् ग्रहे केन्द्रोपगते तद्दिगभिमुखद्वारं सूतिकागृहं वक्तव्यम्। बहुषु केन्द्रगतेषु यो बलवांस्तद्दिगभिमुखं वाच्यम्। अन्ये लग्नद्वादशांशराशिदिगभिमुखं वर्णयन्ति। अन्ये तदधिपदिगभिमुखं कथयन्ति। असति वा विलग्नर्क्षादिति। शून्येषु केन्द्रेषु लग्नराशेर्या-दिगभिहिता तद्दिगभिमुखं द्वारं सूतिकागृहं वक्तव्यम्। दीपोऽर्कादिति। चरराशिव्यवस्थितेऽर्के संचार्यमाणो दीप आदेश्यः। स्थिरराशिस्थेऽर्के एकदेशस्थः द्विस्वभावराशिस्थे चालितः स्थापितश्चेति। उदयाद्वर्तिः आदेश्या। लग्नारम्भक्षणे क्षिप्तैकावर्तिः। लग्नावसाने सर्वा दग्धा। अन्तरालेऽनुपाततो वर्तिदग्धप्रमाणं वक्तव्यम्। इन्दुतः स्नेहनिर्देश इति। यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितः तत्र यदि प्रारम्भ एवं स्थितो भवति तदा स्नेहभाजनं पूर्णं वक्तव्यम्। यद्यन्तिमभागे तदा दीपभाजनं स्नेहान्तं वक्तव्यं मध्येऽर्धं अन्यत्रानुपातः।।६।।

केन्द्र (१।४।७।१०) स्थित ग्रहों से सूतिकाग्रह का द्वार समझना (केन्द्र में बहुत ग्रह हों तो बलवान् ग्रह की दिशा में) एवं यदि केन्द्र में ग्रह न हों तो लग्न राशि की जो दिशा हो, उस दिशा में द्वार समझना चाहिए। तथा सूर्य से दीप, चन्द्र से तेल और लग्न से बत्ती का आदेश करना।।६।।

विशेष-चन्द्रमा के अंशानुसार दीप में तेल का प्रमाण समझना। अर्थात् चन्द्रमा राशि के आरंभ अंश में हो तो दीप में तेल पूर्ण, राशि के अन्त अंश में हो तो तेल का भी अन्त, मध्य में अंशानुपात से तेल का प्रमाण समझना।

एवं उदय (लग्न) के अंश से बाती का प्रमाण भी इसी प्रकार समझना। (१२, लग्न, २) ये पूर्व में, (३, ४, ५) ये उत्तर में, (७, ८, ६) ये पश्चिम में, तथा (६, १०, ११) ये भाव सर्वदा दक्षिण दिशा में रहते है। इसका अभिप्राय यह है कि लग्नादिद्वादशभाव के अनुसार सूर्य जिस दिशा में रहे उस दिशा में दीप की स्थिति समझना।

कतिपय टीकाकारों ने 'दीपोऽर्कात्' से सूर्य जिस (चर, स्थिर, द्विस्वभाव) राशि में रहे तदनुसार दीपक की भी स्थिति समझना, ऐसा अर्थ किये हैं-सो परम असङ्गत एवं प्रत्यक्षविरुद्ध है। कारण सूर्य तो एक राशि में १ मास तक रहता है तो क्या १ मास तक दीप की स्थिति सर्वत्र भला एक जैसी रह सकती है? ऐसा असम्भव है।

सूतिकागृह का स्वरूप-

अदृढं नवमथ दग्धं चित्रं सुदृढं मनोरमं जीर्णम्।
गृहमर्कादिकवीर्यात् प्रतिभवनं सन्निकृष्टैश्च ।।७।।

सं० टी०-सूतिकागृहस्वरूपज्ञानमाह। अर्काद्यैर्ग्रहैर्वीर्याद्‌बलाधिक्यात् सूतिकागृहं वाच्यम्। तत्र सर्वग्रहेभ्योऽर्के बलपति सति सूतिकागृहमदृढं वाच्यम्। चन्द्रे बलवति नवं, भौमे दग्धं, बुधे चित्रं, बृहस्पतावत्यन्तदृढं, शुक्रे मनोरमं, शनैश्चरे जीर्णम्। प्रतिवेश्मसन्नि-कृष्टैश्चेति। सन्निकृष्टैः प्रतिवेश्म वक्तव्यम्। गृहदातृग्रहस्य पुरतः पश्चाद्वा ये ग्रहाः स्थितास्तेनैव क्रमेण सूतिकागृहात्प्रतिवेश्म गृहाणि वाच्यानि।।७।।

जन्मकाल में यदि सब ग्रहों की अपेक्षा सूर्य बलवान् हो तो सूतिका गृह अदृढ़ (कमजोर), चन्द्र बली हो तो नवीन, मङ्गल बली हो तो जला हुआ, बुध बली हो तो कलापूर्ण, बृहस्पति बली हो तो सुदृढ़ (अत्यन्त मजबूत), शुक्र बली हो तो परम मनोरम (रमणीक) तथा शनि बली हो तो जीर्ण (संस्कारयुत, मरम्मत

किया हुआ) कहना। और उसी ग्रह के समीपवर्ती अर्थात् सम्मुख, वाम, दाहिने और पृष्ठस्थित ग्रहों के अनुसार उपग्रह का स्वरूप भी कहना चाहिये।।७।

विशेष- अपने से सप्तम सम्मुख, चतुर्थभाव दाहिना, दशमभाव वाम तथा साथ में रहने वाला ग्रह पृष्ठभागगत समझना चाहिए। अभिप्राय यह है कि बली ग्रह से जिस भाग में जो-जो ग्रह हों उस-उस भाग में उन ग्रहों के समान उक्तरीति से अन्य भवनों (उपगृहों) का भी विचार करना चाहिये।

सूतिकागृह के मञ्जिल और बरामदा का ज्ञान-

गुरुरुच्चो दशमस्थो द्वित्रिचतुर्भूमिकं करोति गृहम्।
धनुषि सबलस्त्रिशालं द्विशालमन्येषु यमलेषु।।८।।

सं० टी०- गृहभूमिकाशालाज्ञानमाह। बृहस्पतिरुच्चस्थो लग्नाद्यदि दशमस्थाने भवति तदा द्वित्रिचतुर्भूमिक गृहं वक्तव्यम्। कथमुच्यते। यदा परमोच्चभागान् पञ्चातिक्रम्य स्थितो भवति तदा द्विभूमिकं करोति गृहम्। यदा भागः पञ्चमादर्वाक् भवति तदा त्रिभूमिकं करोति। यदा पञ्चभागे भवति तदा चतुर्भूमिकं करोति। धनुषीत्यादि धनुर्धरस्थे जीवे बलोपेते तदा त्रिशालं वक्तव्यम्। द्विशालमन्येषु यमलेषु। यमलर्क्षेषु मिथुनकन्यामीनेष्वेवस्थिते जीवे बलोपेते द्विशालं गृहं वक्तव्यम्।।८।।

उच्च (कर्क) राशिस्थ बृहस्पति दशवें स्थान में हो तो सूतिका का घर ऊपरी स्थान पर अर्थात् दूसरे, तीसरे, चौथे आदि मञ्जिल पर जन्म समझना। और बलवान् बृहस्पति यदि धनु राशि में हो तो सूतिका गृह तीन बरामदे से, अन्य द्विस्वभाव (मिथुन, कन्या, मीन) में हो तो बरामदे से युक्त घर समझना चाहिये।।८।।

सूतिका की शय्या का ज्ञान-

षट्त्रिनवान्त्याः पादाः खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि।
विनतत्वं यमलर्क्षैः क्रूरैस्तत्तुल्य उपघातः।।९।

सं० टी०- खट्वाङ्गस्वरूपज्ञानमाह। लग्नात्षट्तृतीयनवमद्वादशराशयः खट्वायाः पादा वक्तव्याः। एतदुक्तं भवति। येन लग्नेन प्रसवस्तदुक्तायां दिशि शय्यायाः शिरः। लग्नात् द्वादशतृतीयौ पूर्व पादौ। तत्रापि तृतीयो दक्षिणः द्वादशो वामः। षट्नवमौ पश्चिमौ तत्रापि षष्ठो दक्षिणः नवमो वामः। खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि। लग्नं द्वितीयं शीर्षे, चतुर्थे पञ्चमं दक्षिणाङ्गे, सप्ताष्टौ पादभागे, दशमैकादशौवामाङ्गे। अस्य प्रयोजनं विनतत्वमित्यादि। यस्मिन् खट्वाङ्गे यमलौ द्विस्वभावराशिर्भवति तस्मिन् भागे विनतत्वं नम्रत्वं वाच्यम्। यस्मिन् खट्वाङ्गे क्रूरग्रहो भवति तस्मिन्नङ्गे ग्रहतुल्य उपघातो वक्तव्यः। यत्रार्कोभवति तदङ्गमदृढं यत्र भौमस्तद्दग्धं यत्र शनैश्वरस्तज्जीर्णमिति। अत्रापि यमलर्क्षे सौम्यग्रहः स्वामियुक्तोऽप्यविनतत्वं पापग्रहोऽपि स्वोच्चत्रिकोणस्थो मित्रगृहस्थो नोपघातः।।९।।

लग्न से ६।३।९।१२ राशियाँ सूतिका की खटिया के चारों पावे समझना और इन चारों के मध्य क्रम से दो-दो राशियाँ खटिया के अन्य अंग (चारों पाटी) समझना। इस प्रकार जहाँ द्विस्वभाव राशि पड़े तो वहाँ के स्थान में नम्रता (झुकाव, टेढ़ा-मेढ़ा) और जिस स्थान की राशि पापग्रह से युक्त हो वहाँ का स्थान उपघात युक्त समझना।।९।।

नालवेष्टिताङ्ग ज्ञान-

छागे सिंहे वृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे।
राश्यंशसदृशे गात्रे जायते नालवेष्टितः।।१०।।

सं० टी०- स्पष्टार्थः।।१०।।

जन्मकाल में मेष, सिंह या वृष लग्न हो और उसमें यदि शनि या मंगल बैठा हो तो लग्नगत नवांश राशि अंग में जातक को नाल से लिपटा हुआ समझना।।१०।।

विशेष-राशि के अंग पूर्व कथित *'कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां'* इत्यादि से जानना।

सूतिका के आभूषण-धातु आदि का ज्ञान-

ज्ञेयानि ताम्रमणिहेमयुक्तिरौप्याणि मौक्तिकं लोहम्।
अर्काद्यैर्बलवद्भिः स्वस्थाने हेम जीवेऽपि।।११।।

सं० टी०-सूतिकागृहे द्रव्यज्ञानार्थमाह। सर्वग्रहेभ्योऽर्के बलवति सूतिकागृहे ताम्रं वक्तव्यम्। चन्द्रे बलवति मणयः, भौमे सुवर्णं, बुधे शुक्तिरिति कांस्यादि, बृहस्पतौ रौप्यं, शुक्रे मुक्ताफलानि, शनैश्चरे लोहम्। स्वस्थाने हेम जीवेऽपि इति। धनुर्धरमीनयोरन्यतरराशिव्यवस्थिते जीवे सर्वग्रहेभ्यो बलवति रौप्यं न वक्तव्यं सुवर्णं वक्तव्यमिति।।११।।

जन्मकाल में सूर्यादि ग्रह बलवान् हो तो सूतिका के अंग (प्रकारान्तरेण गृहं) पर क्रम से ताँबा, मणि, सुवर्ण, कांसा-पीतल, चाँदी, मोती और लोहा का आभूषण समझना। यदि बृहस्पति अपने स्थान (धनु-मीन) में हो तो निश्चय ही सूतिका के अंग अथवा घर में सुवर्ण समझना चाहिये।।११।।

विशेष-अनेक ग्रह बली होतो तत्-तद् धातुओं के आभूषण समझना एवं यदि सब ग्रह निर्बल हों तो आभूषणों का सर्वथा अभाव है, ऐसा जानना।

उपसूतिका ज्ञान-

शशिलग्नान्तरसंस्थग्रहतुल्याश्चोपसूतिका ज्ञेयाः।
उदगर्धेऽभ्यन्तरगा बाह्याश्चक्रस्य दृश्येऽर्धे।।१२।।

सं० टी०-उपसूतिकाज्ञानमाह। लग्नादारभ्य चन्द्रमा यस्मिन् राशौ व्यवस्थितस्तदन्तरे यावन्तो ग्रहा व्यवस्थितास्तावत्संख्या उपसतिका वक्तव्याः। वक्ष्यमाणायुर्दायाध्यायात्तासां द्वित्रिगुणत्वादि वक्तव्यम्। वक्ष्यमाणवर्गोत्तमस्वराशिद्रेष्काणनवांशे द्विगुणं वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं द्वित्रिगुणत्वे सकृत् त्रिगुणमिति सूतिकानामुपसूतिकानां ग्रहरूपजाति-

वयोवर्णरूपादयो वक्तव्याः। उदगर्धं इत्यादि। उत्तरदिग्व्यवस्थितमुदगर्धं अदृश्यमित्यर्थः। तस्मिन्नदृश्येऽर्थे लग्नचन्द्रान्तरगतानां मध्ये यावन्तो ग्रहा व्यवस्थितास्तावन्त्य उपसूतिका आगारे एवं वक्तव्याः। चन्द्र-लग्नान्तरगतानां ग्रहाणां मध्ये यावन्तो ग्रहा दृश्ये चक्रस्यार्द्धे व्यव स्थितास्तावन्त्य उपसूतिकाः सूतिकागाराद्बहिर्वक्तव्याः।।१२।।

लग्न से चन्द्रमा पर्यन्त जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिका (सूतिका के समीप रहने वाली अन्य स्त्रियों) की संख्या समझनी चाहिए। चक्र के अदृश्यार्ध (लग्न से आगे सप्तम पर्यन्त जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिका घर के भीतर और जितने दृश्य चक्रार्ध (सप्तम से लग्न पर्यन्त) ग्रह हों उतनी घर के बाहर समझना।१२।

इति लघुजातके सूतिकाध्यायः।।६।।

अथारिष्टाध्यायः।।७।।

अरिष्टयोग-

षष्ठेऽष्टमेऽपि चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंदृष्टः।
अष्टाभिः शुभदृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदर्धेन।।१।।

सं० टी०- अथारिष्टाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रारिष्टयोगमाह। यस्य जन्मलग्नात् षष्ठस्थाने यदि चन्द्रमा भवति अथवाऽष्टमे। सौम्यग्रहैरदृश्यमानः पापग्रहैर्दृश्यते तदा जातस्य सद्यो मरणं वक्तव्यम्। अथवा षष्ठाष्टमे चन्द्रमाः पापग्रहेण न दृश्यते सौम्येन दृश्यते तदा जातस्य वर्षाष्टमे मरणं वक्तव्यम्। अथवा षष्ठाष्टमे चन्द्रमाः सौम्येन दृश्यते पापेन च दृश्यते तदा जातस्य वर्षचतुष्टयेन मरणं वक्तव्यम्। अथ षष्ठाष्टमगश्चन्द्रमाः न कश्चिद् दृश्यते तदा योग एव न भवति।।१।।

जन्म लग्न से चन्द्रमा ६।८ स्थान में (केवल) पापग्रह से दृष्ट हो तो शीघ्र मरण कहना। यदि मात्र शुभग्रह से दृष्ट हो तो ८

वर्ष तक एवं यदि पाप-शुभ दोनों से दृष्ट हो तो उसका आधा (अर्थात् ४ वर्ष तक) जातक की स्थिति (जीवन) समझना।।१।।

शशिवत्सौम्याः पापैर्वक्रिभिरवलोकिता न शुभदृष्टाः।
मासेन मरणदाः स्युः पापजितो लग्नपश्चास्ते।।२।।

सं० टी०- अरिष्टान्तरमाह। शशिना तुल्यः शशिवत्सौम्याः एतदुक्तं भवति लग्नात् षष्ठे स्थाने अष्टमेऽपि वा कश्चित् सौम्यग्रहो भवति स च पापग्रहेण वक्रगतेन दृश्यते वक्रग्रहणमवशेषबलोपरक्षणार्थम्। एवं जाते बलिना ग्रहेण पापेन दृश्यते न चाप्येकेन सौम्यग्रहेण दृश्यते तदा जातस्य मासेन मरणं वक्तव्यम्। पापजितो लग्नपश्चास्त इति यस्य जन्मलग्नाधिपतिः पापसमागतो पापग्रहगेहे दृश्यते वा जिताः स लग्नात् सप्तमे यदि भवति तदा मासेन मरणं वक्तव्यम्। जितलक्षणमुच्यते। *'दक्षिणादिक्स्थः पुरुषो वेमथुरप्राप्य सन्निवृतोऽणुः। अधिरूढो विकृतो निःप्रभो विवर्णश्च य स जितः'* इति।।२।।

यदि चन्द्रमा के समान ही कोई शुभग्रह जन्मलग्न से छठे या आठवें भाव में स्थित हो और वक्री (बलवान्) पापग्रह से दृष्ट और किसी शुभग्रह की दृष्टि से रहित हो तो १ मास में, यदि पापग्रह से पराजित लग्नेश सप्तम भाव में हो तो भी १ मास तक जातक का जीवन समझना।।२।।

राश्यन्तस्थैः पापैः सन्ध्यायां हिममयूखहोरायाम्।
मृत्युः प्रत्येकस्थैः केन्द्रेषु शशाङ्कपापैश्च।।३।।

सं० टी०- अरिष्टान्तरमाह। यत्र तत्र राशौ पापग्रहो व्यवस्थितः स नवमे नवांशके स्थितः एवं सर्वे ग्रहाः पापा यदा राश्यन्तस्था भवन्ति संन्ध्याकालश्च भवति तदा जातस्य मृत्युर्भवति संध्यालक्षणम्।

'अर्धास्तसमयात्सन्ध्या व्यक्ती भूता न तारका यावत्।
तेजः परिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयं यावत्।।इति।।

तस्मिन्सन्ध्याकाल इति प्रत्येकस्थैः केंद्रेषु शशाङ्कपापैश्चेति चतुर्षु केन्द्रेषु यथा तथाऽर्कचन्द्र भौमशनैश्चराणामन्यतमो भवति तदा जातस्य मृत्युर्वक्तव्यः।।३।।

सन्ध्याकाल के समय लग्न में चन्द्रमा की होरा हो और समस्त पापग्रह राशि के अन्तिम नवांश में हो तो अथवा यदि चारों केन्द्र (१।४।७।१०) में प्रत्येक में चन्द्रमा और पापग्रह (सूर्य-मङ्गल-शनि) हो तो मरणप्रद समझना।।३।।

चक्रप्राक्पश्चार्द्धे पापशुभैः कीटभोदये मृत्युः।
निधनचतुष्टयगैर्वा क्रूरैः क्षीणे शशिन्युदये।।४।।

सं० टी० - अरिष्टयोगद्वयमाह। यावानंशो लग्नस्याऽभ्युदितस्तावत्संख्याकाद्दशमराशेरंशादारभ्यया वच्चतुर्थस्यैव राशेस्तावत्संख्यैर्वांशस्तावच्चक्रस्य पूर्वार्द्धं द्वितीयमपरार्धं ज्ञेयम्। यत्र यदा चक्रस्य पूर्वार्द्धे सर्वे पापाव्यवस्थिता भवन्ति वृश्चिककीटयोरन्यतमं च लग्नं भवति तदा जातस्य मृत्युर्भवति। निधनचतुष्टयेत्यादि। अष्टमकेन्द्रगैर्यथा तथा पापैः क्षीणे चन्द्रमसि लग्ने सति यस्य जन्म भवति स म्रियते।।४।।

कीट (कर्क या वृश्चिक) लग्न हो और चक्र से पूर्वार्ध (दशम भाव राश्यादि पर्यन्त) में पापग्रह और चक्र के परार्ध-(चतुर्थभावराश्यादि से दशमभावराश्यादि पर्यन्त) में शुभग्रह हों तो जातक की मृत्यु कहना। एवं यदि सभी पाप ग्रह अष्टम और केन्द्र (१।४।७।१०) में स्थित हों और क्षीण चन्द्रमा लग्न में बैठा हो तो भी मरणकारक होता है।।४।।

सप्ताष्टान्त्योदयगे शशिनि सपापें शुभेक्षणवियुक्ते।
न च कण्टकेऽस्ति कश्चिच्छुभस्तदा मृत्युरादेश्यः।।५।।

सं० टी०- अरिष्टान्तरमाह। सप्ताष्टद्वादशनामेकतमेऽपि स्थाने लग्ने वा चन्द्रः पापाग्रहयुतो भवति। शुभग्रहेण बुधगुरुशुक्राणामेकतमेनापि न दृश्यते न च युक्तो न च केन्द्रेषु शुभग्रहः कश्चिदेवंविधे योगे जातस्य मरणमादेश्यम्।।५।।

पापग्रह से युक्त चन्द्रमा ७।८।१२।१, इन भवनों में स्थित हो, केन्द्र में कोई भी शुभग्रह न हो तो अन्य स्थानीय (केन्द्र से भिन्न स्थानीय) शुभग्रह से देखा भी न जाता हो तो ऐसे योग में जातक की मृत्यु कहना।।५।।

क्षीणेन्दौ द्वादशगे लग्नाष्टमराशिसंस्थितैः पापैः ।
सौम्यरहिते च केन्द्रे सद्यो मृत्युर्विनिर्देश्यः ।।६।।

सं० टी०-अरिष्टान्तरमाह। यस्य जन्मलग्नाद् द्वादशस्थाने क्षीणश्चन्द्रो भवति लग्नाष्टमराशौ यदि पापा व्यवस्थिताः सौम्यरहितानि केन्द्राणि भवन्ति तदा जातस्य सद्यो मरणं वक्तव्यम्।।६।।

क्षीण चन्द्रमा द्वादशभाव में हो और लग्न तथा अष्टमभाव में पापग्रह हो और किसी केन्द्र में शुभग्रह न हो तो जातक का शीघ्र ही मरण कहना।।६।।

चतुरस्रे सप्तमगः पापान्तस्थाः शशी मरणदाता ।
उदयगतो वा चन्द्रः सप्तमराशिस्थितैः पापैः ।।७।।

सं० टी०- अरिष्टयोगद्वयमाह। लग्नाच्चन्द्रमाश्चतुर्थे स्थानेऽष्टमे वा सप्तमे वा स्थितस्तत्र च पापग्रहयोर्मध्यगतस्तदा जातस्य मरणं करोति इत्यर्थः। उदयगतो वेत्यादि। लग्ने चन्द्रमा भवति सप्तमस्थाः पापाश्च भवन्ति तदा जातस्य मृत्युर्वक्तव्यः।।७।।

जन्मलग्न से ४।८।७ इन स्थानों में चन्द्रमा यदि दो पापग्रहों के मध्य में पड़ा हो तो अथवा पापमध्यगत चन्द्र लग्न में हो और सप्तमभाव में पापग्रह हो तो मृत्यु कहना।।७।।

सोपप्लवे शशाङ्के सक्रूरे लग्नगे कुजेऽष्टमगे।
मृत्युर्मात्रा सार्द्धं चन्द्रवदर्के च शस्त्रेण।।८।।

सं० टी०- अरिष्टान्तरमाह। सह उपप्लवेन वर्तते सोप्लवः चन्द्रग्रहणकाले लग्नगते चन्द्रमसि तत्रैव शनैश्वरे पापे व्यवस्थिते लग्नादष्टमगते च भौमे जातः शिशुर्म्रियते मात्रा सहैव। चन्द्रवदर्के सशस्त्रेणेति। चन्द्रेण तुल्यं चन्द्रवत् एतदुक्तं भवति आदित्यग्रहणकाले अर्को लग्नगतो भवति तत्रैव शनैश्वरः पापग्रहः अष्टमो भौमः तदा जातस्य तन्मातुश्च शस्त्रतो मृत्युर्भवति।।८।।

राहु से ग्रस्त (ग्रहणकालिक) चन्द्रमा यदि पापग्रह से युक्त हुआ लग्न में बैठा हो और मङ्गल ८ वें भाव में हो तो माता सहित जातक की मृत्यु कहना। यदि इस प्रकार का योग सूर्य में हो (अर्थात् राहु में ग्रस्त सूर्य पापग्रह सहित लग्न में हो और मङ्गल अष्टमभाव में हो) तो उक्तमरण (माता सहित जातक का मरण) शस्त्र के द्वारा समझना।।८।।

लग्न-द्वादश-नवमाऽष्टमसंस्थैश्चन्द्र-सौरि-सूर्याऽऽरैः।
जातस्य भवति मरणं यदि न बलयुतः पतिर्वचसाम्।।९।।

सं० टी०- अरिष्टान्तरमाह। यस्य जन्मनि लग्नगतश्चन्द्रमा भवति द्वादशस्थः शनैश्वरः नवमोऽर्कः अष्टमो भौमो भवति जीवश्च बलवान्न भवति तदा जातस्य मरणं भवति।।९।।

चन्द्र, शनि, सूर्य, मङ्गल ये क्रम से १।१२।९।८ में स्थित हों और बृहस्पति बलवान् न हो तो मरणप्रद होता है।।९।।

विशेष- यहाँ बलवान् का तात्पर्य यह है कि यदि बलवान् बृहस्पति से उक्त योगकारक ग्रह दृष्ट न हों तभी मरण कहना। 'यदि बलिना गुरुणा न दीक्षिताः' ऐसा स्वयं ग्रन्थकर ने ही बृहज्जातक में कहा है।

सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः।
भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा।।१०।।

सं० टी० - अरिष्टान्तरमाह। लग्नात्पञ्चमसप्तमनवमद्वादशाष्टमस्थानानामन्यतमस्थानस्थः लग्नस्थो वा चन्द्रो भवति स च पापग्रहयुतो भवति

शुक्रबुधबृहस्पतीनामन्यतमेन बलिना न युक्तो न दृश्यते वा तदा जातस्य मरणाय भवति।।१०।।

पापयुक्तचन्द्रमा ५।७।६।१२।१।८ इन स्थानों में हो और यदि बली शुक्र, बुध या बृहस्पति से युत या दृष्ट न हो तो मरण कहना।१०।

योगे स्थानं गतवति बलिनश्चन्द्रे स्वं वा तदनुगृहमथवा।
पापैर्दृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम्।।११।।

सं० टी०- अनुक्तमरणकालानामरिष्टानां कालज्ञानमाह। यस्मिन्नरिष्टयोगे जातस्य मरणकालविधिर्नोक्तस्तस्मिन्योगे जातस्य ये योगकर्तारो ग्रहास्तेषां मध्ये यो बलवान्स यस्मिन्नराशौ जन्मकाल व्यवस्थितस्तत्र चारक्रमाच्चन्द्रमसि प्राप्ते जातस्य मरणं वक्तव्यम्। स्वं आत्मीयं स्थानं वा गते चन्द्रमसि जातकाले यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तमेव राशि पुनरपि गते चन्द्रमसि तस्य मरणं वक्तव्यम्। तनुगृहं लग्नं तत्र चारक्रमात् गते चन्द्रमसि तस्य मरणं वक्तव्यम्। कदेत्युच्यते वर्षस्यान्तः संवत्सरस्यांतरे। एतदुक्तं भवति अनुक्तमरणकालमारभ्य जातो वर्षमतिक्रमतीति तत्र प्रतिमासमेवैतानि चन्द्रमस्थराशित एवावगन्तव्यानि। तद्वर्षाभ्यन्तरे तस्य कदा मरणं वक्तव्यमित्यत आह पापैर्दृष्टे बलवति। दर्शित-राशित्रये एकस्मिन् राशौ यदा बलवान् चन्द्रो भवति पापैश्च दृष्टो भवति तदा तस्य मरणं वक्तव्यं न केवलगतमात्र एवं चन्द्रे। किल मुनिगदितं किलेत्याग-मसूचना। मुनिगदितमरिष्टलक्षणमित्यागमपारंपर्येण श्रूयत इति।११।

उपरोक्त जिन योगों में मरण का काल नहीं कहा गया है, उन योगों में वर्ष के भीतर जब चन्द्रमा बली होकर अपने स्थान (जन्मकाल के समय चन्द्रमा जिस स्थान 'राशि' पर बैठा हो उसी स्थान) में वा किसी बली ग्रह स्थान में अथवा लग्न राशि में जाय एवं पापग्रहों से दृष्ट हो उस समय में उस जातक का मरण मुनिजनों ने कहा है।।११।।

विशेष- कहने का तात्पर्य यह है कि जब पूर्व कथित (अरिष्ट योगकारक) स्थानों में से किसी स्थान पर चन्द्रमा बली होकर प्राप्त होता हो और पापग्रह देखते हों तभी वर्ष के भीतर उत्पन्न जातक की मृत्यु कहे। क्योंकि जिन मृत्युकारक योगों का काल नहीं कहा गया है, वे योग वर्ष को उल्लङ्घन नहीं करते हैं। अर्थात् यदि उक्तअरिष्ट योगों के रहते एक वर्ष कुशलपूर्वक व्यतीत हो जाय तो आगे भय न मानना।

इति लघुजातके अरिष्टाध्यायः।।७।।

अथाऽरिष्टभङ्गाध्याय: ।। ८ ।।

सर्वानिमानतिबल: स्फुरदंशुजालो
लग्नस्थित: प्रशमयेत्सुरराजमन्त्री ।
एको बहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि
भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरप्रणाम: ।।१।।

सं० टी० - स्पष्टार्थ: ।।१।।

प्रकाशमान किरणों से युक्त बृहस्पति बलवान् होकर लग्न में हो तो समस्त अरिष्टों को नाश करते हैं, जैसे भक्ति पूर्वक शिवजी के प्रति किया गया एक ही प्रणाम समस्त महापापों को नाश कर देता है ।।१।।

लग्नाधिपोऽतिबलवानशुभैरदृष्ट:
केन्द्रस्थितै: शुभखगैरवलोक्यमान: ।
मृत्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायु:
सार्द्धंगुणैर्बहुभिरूर्जितया च लक्ष्म्या ।।२।।

सं० टी० - स्पष्टार्थ: ।।२।।

बली लग्नेश पापग्रहों से अदृष्ट और केन्द्र स्थित शुभग्रहों से दृष्ट हो तो मृत्युयोग को दूर करके श्रेष्ठ लक्ष्मी सहित गुण तथा दीर्घायु करता है ।।२।।

लग्नादष्टमवर्त्यपि बुधगुरुभार्गवदृक्काणगश्चन्द्र: ।
मृत्युं प्राप्तमपि नरं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ।।३।।

सं० टी० - स्पष्टार्थ: ।३।।

चन्द्रमा अष्टम (अरिष्ट) भाव में ही क्यों न पड़ा हो किन्तु यदि बुध, बृहस्पति अथवा शुक्र के द्रेष्काण में हो तो मृत्युप्राप्त जातक की भी सर्वथा रक्षा ही करता है ।।३।।

चन्द्रः सम्पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः स्थितः शुभस्यान्तः ।
प्रकरोति रिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ।।४।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।४।।

पूर्ण चन्द्रमा यदि शुभग्रहों की राशि पर स्थित होकर शुभग्रहों के मध्य में पड़ा हो तो अरिष्टों का नाश करनेवाला होता है। तिस पर यदि शुक्र की दृष्टि हो तो विशेष (अवश्य) ही अरिष्टों का नाश करता है।।४।।

बुधभार्गवजीवानामेकतमः केन्द्रमागतो बलवान् ।
क्रूरसहायो यद्यपि सद्यो रिष्टस्य भङ्गाय ।।५।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।५।।

अशुभग्रहों से युत-दृष्ट रहते हुए भी यदि बुध, शुक्र, बृहस्पति इनमें से एक भी बलवान् होकर केन्द्र (१, ४, ७, १०) स्थान में हो तो शीघ्र ही अरिष्टों का नाश करे।।५।।

रिपुभवनगतोऽपि शशीगुरुसितचन्द्रात्मजदृकाणस्थः ।
गरुड इव भोगिदष्टं परिरक्षत्येव निर्व्याजम् ।।६।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।६।।

षष्ठस्थान स्थित चन्द्र भी यदि बृहस्पति, शुक्र या बुध के द्रेष्काण में हो जो जातक की निष्कपट ही रक्षा करे, जैसे सर्प के काटे हुए की गरुड़ रक्षा करता है।।६।।

सौम्यद्वयमध्यगतः सम्पूर्णः स्निग्धमण्डलः शशभृत् ।
निःशेषारिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इव ।।७।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।७।।

पूर्ण चन्द्रमा यदि दो शुभग्रहों के मध्य में पड़ा हो तो समस्त

अरिष्टों का नाश उसी प्रकार कर देता है, जैसे सर्पों के समूहों को गरुड़।।७।।

शशभृति पूर्णशरीरे शुक्ले पक्षे निशाभवे काले।
रिपुनिधनस्थे रिष्टं प्रभवति नैवात्र जातस्य।।८।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।८।।

लग्न से षष्ठ या अष्टमभाव में भी चन्द्रमा के रहने पर यदि जन्म शुक्ल पक्ष में हो, पूर्ण विम्ब चन्द्रमा हो और रात्रि का समय हो तो जातक को अरिष्ट नहीं होता।।८।।

प्रस्फुरितकिरणजाले स्निग्धामलमण्डले बलोपेते।
सुरमन्त्रिणि केन्द्रगते सर्वारिष्टं शमं याति।।९।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।९।।

पूर्ण विम्ब युत् बलवान् बृहस्पति केन्द्र स्थान में हो तो समस्त अरिष्टों को नाश करते हैं।।९।।

सौम्यभवनोपयाताःसौम्यांशकगाः सौम्यदृकाणस्थाः।
गुरुचन्द्रकाव्यशशिजाः सर्वेऽरिष्टस्य हन्तारः।।१०।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।१०।।

बृहस्पति, चन्द्रमा, शुक्र, बुध में यदि शुभराशि, शुभनवांश अथवा शुभग्रहों के द्रेष्काण में हो तो समस्त अरिष्टों के नाश करनेवाले हैं।।१०।।

चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वाऽपि।
प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम्।।११।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।११।।

चन्द्राश्रित राशि का स्वामी अथवा कोई शुभ ग्रह यदि केन्द्र

में हो तो अरिष्टों का नाश उसी प्रकार हो जाता है, जैसे पापों का नाश हरिस्मरण से होता है।।११।।

पापा यदि शुभवर्गे सौम्येर्दृष्टाः शुभेशवर्गस्थैः।
निघ्नन्ति तदा रिष्टं पतिं विरक्ता यथा युवतिः।।१२।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।१२।।

अरिष्टकारक पापग्रह भी यदि शुभग्रह के षड्वर्ग में हो और शुभवर्गस्थित शुभग्रह से दृष्ट हो तो स्वकृत अरिष्टों को उसी प्रकार नाश कर देते हैं, जैसे विरक्ता स्त्री (युवती) अपने पति को भी मार देती है।।१२।

राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः।
नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसंघातम्।।१३।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।१३।।

जन्मकाल में ३।६।११ भाव में राहु बैठा हो और उस पर यदि शुभग्रह की दृष्टि हो तो समस्त अरिष्टों का नाश उसी प्रकार कर देता है, जैसे तूल (रूई) के ढेर को पवन।।१३।।

शीर्षोदयेषु राशिषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ।
प्रकृतिस्थितञ्चारिष्टं विलीयते घृतमिवाग्निस्थम्।।१४।।

सं० टी०-स्पष्टार्थः।।१४।।

जन्मकाल में यदि सब ग्रह शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) में हो तो स्वकृत अरिष्ट योग को नाश करते हैं, जिस प्रकार अग्नि में घृत।।१४।।

तत्काले यदि विजयी शुभग्रहः शुभनिरीक्षितोऽवश्यम्।
नाशयति सर्वारिष्टं मारुत इव पादपान् प्रबलः।।१५।।

सं० टी० - स्पष्टार्थः।।१५।।

जन्मकाल में यदि कोई भी शुभग्रह युद्ध में विजयी हुआ हो और उस पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो जिस प्रकार प्रबल वायु वृक्षों को उखाड़ फेकती है उसी प्रकार निश्चय ही सब अरिष्ट नाश हो जाते हैं।।१५।।

पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां
कृष्णे तथाऽहनि शुभाशुभऽदृश्यमानः।
तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्ना-
दापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति।।१६।।

सं० टी० - स्पष्टार्थः।

शुक्लपक्ष में रात्रि के समय जन्म हो और चन्द्रमा पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो अथवा कृष्णपक्ष में दिन के समय जन्म हो और चन्द्रमा पर पापग्रह की दृष्टि हो तो ६।८ स्थान में चन्द्रमा के रहने पर भी जातक की रक्षा ही करता है, मारता नहीं।।१६।।

इति लघुजातके अरिष्टभङ्गाध्यायः।।८।।

अथाऽऽयुर्दायाध्यायः।।९।।

ग्रहायुर्दाय-

राश्यंशकला गुणिता द्वादशनवभिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः।
द्वादशहृतावशेषेऽब्दमासादिनाडिकाः क्रमशः।।१।।

सं० टी० - अथायुर्दायाध्यायं व्याख्यास्यामस्तत्र पुरुषजन्मकाले स्फुटगणितेन विशेषकर्मणा स्फुटाग्रहास्तात्कालिकाश्च क़र्तव्याः लग्नं च तात्कालिकं कर्तव्यं तात्कालिकस्यैवार्कस्यायुर्दायः कर्तव्यः। तत्करणोपायमाह। तात्कालिकग्रहस्य राश्यंशकलाविकलाः पृथक् द्वादशभिर्गुणितास्ततो

नवभिर्गुणिता एवमष्टाधिकशतेन गुणिताः कार्या विलिप्तानां मध्ये व्युतक्रमेण षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं कलासु योज्यम् यदवशिष्टं फलानि। कलाभ्यो षष्ट्या भावम पहृत्यावाप्तं अंशेषु योज्यं ज्ञेयं घट्यः ततो भागेषु त्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तं राशिषु योज्यं शेषं दिवसाः। ततो राशिषु द्वादशभिर्भागमपहृत्यावाप्तं ते भगणाः शेषं मासाः। भगणानामपि द्वादशभागमपहृत्यावाप्तं त्याज्यं शेषाणि वर्षाणि। एवमब्दमासादिननाडिकाः क्रमशः इति। उदाहरणम्। तद्यथा-स्फुटग्रहः ३।२९।५९।५९ अस्य 'राश्यंशकलाविकला द्वादशभिर्गुणिता जातं ३६।३४८।७०८।७०८ पुनरपि नवभिर्गुणिता ३२४।३१३२।६३७२।६३७२ ततो विलिप्तिकासु एतासु षष्ट्या भागमपहृत्यावाप्तं १०६ तत्कलाशु योजितं ६४७८ शेषम् १२ पलानि ताभ्यो षष्टिभागमपहृत्यावाप्तं १०७ अंशेषु योजितं ३२३९ शेषम् ८ एता घट्यः। एषु त्रिंशता लब्धम् १०७ तद्राशिषु युक्तम् ४३१ शेषम् २९ एते दिवसाः पुना राशौ द्वादशभागेन लब्धम् ३५ एते भगणाशेषम् ११ एते मासाः भगणेभ्यो द्वादशभागेन लब्धम् २ निरुपयोगत्वात्त्याज्यं शेषम् ११ वर्षाणि। वर्षमासदिनघटीपलादेरेघोऽधःस्थापनाकार्या। एवं सर्वेषा ग्रहाणां करणीयम्। एवं कृते आयुर्दाया भवति।१।

जिस ग्रह का आयुर्दाय जानना हो उसके तात्कालिक स्पष्ट राशि-अंश-कला-विकला को १२ और ९से अर्थात् १०८से गुना कर सवर्णन करके अर्थात् विकला में ६० से भाग देकर लब्धि को कला में जोड़े, फिर उसमें ६० से भाग देकर लब्धि को अंश में, फिर अंश में ३० से भाग देकर लब्धि को राशि में और राशि में १२ से भाग देकर लब्धि को भगण और यदि भगण १२ से अधिक हो तो १२ सें तष्टित करके शेष तुल्य वर्ष और राश्यादि क्षेत्र तुल्य मासादिक (मास-दिन-घटी-पल) उस ग्रह की आयु होती है।१।

उदाहरण-स्पष्ट सूर्य राश्यादि ०।२०।१०।५ है। इसको १०८ से गुना करने से राश्यादि ०।२१६०।१०८०।५४० इसको सवर्णन करने में भगणादि ६।०।१८।६।० यहाँ भगण १२ से कम है अतः यही सूर्य की वर्षादि आयु हुई। एवं अन्य ग्रहों की भी आयु इसी प्रकार जानना।

लग्नायुर्दाय-

होरादायोऽप्येवं बलयुक्ताऽन्यानि राशितुल्यानि।
वर्षाणि संप्रच्छत्यनुपाताच्चांशकादिफलम्।।२।।

सं० टी०-लग्नायुर्दायमाह। होरा लग्नं तद्यायः यथा ग्रहस्यायुर्दायः कृतस्तथा लग्नस्य कार्यः। सा होरा यदि बलयुक्ता तदाऽन्यानि वर्षाणि राशितुल्यानि प्रयच्छति। लग्नस्य यावन्तो भुक्तराशयः तत्समानानि वर्षाणि ददाति तानि आयुर्दाये योज्यानि अनुपाताच्चांशकादिफलम् अनुपातस्त्रैराशिकगणितमभिधीयते। लग्नस्य राशीनपास्य भागादिलिप्तापिण्डः कार्यः तल्लिप्तापिण्डं द्वादशभिः संगुण्य अष्टादशभिः शतै १८०० विभज्यावाप्तं मासाः मासशेषं त्रिंशता ३० संगुण्य अष्टादशशतविभागेन लब्धं दिवसाः। दिनशेषम् षष्टिगुणितं कृत्वा अष्टादशशतैर्लब्धं घटिका शेषम् षष्टिगुणं कार्यम् अष्टादशशतैर्लब्धं पलानि। एवमनुपातेन लब्धो मासादिर्लग्नस्यायुर्दायो ज्ञेयः।।२।।

इसी प्रकार लग्न की भी आयु साधन करे। यदि लग्न बलवान् स्वस्वामि या बुध, गुरु से युत-दृष्ट हो तो लग्न भुक्तराश्यादि तुल्य (वर्षादि) अर्थात् राशि तुल्य वर्ष और अंशों से अनुपात द्वारा मासादिको उक्तआयु में जोड़ने से लग्नकी स्पष्ट आयु होती है।२।

विशेष:-अनुपात इस प्रकार है कि ३० अंश मे १२ मास अर्थात् १ अंश में १२ दिन तो लग्न के भुक्तअंशादि में क्या?।

वर्गोत्तमादि में विशेष

वर्गोत्तमस्वराशिद्रेष्काणनवांशके सकृद्द्विगुणम्।
वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं द्वित्रिगुणत्वे सकृत्तत्रिगुणम्।।३।।

सं० टी०- ग्रहायुर्दायविशेषमाह। यो ग्रहो वर्गोत्तमस्थितः तदायुर्दायो द्विगुणः कार्यः। यः स्वराशौ भवति स्वद्रेष्काणं स्वनवांशके भवति तद्दत्तायुर्दायो द्विगुणः कार्यः। वस्तु वक्री भवति तद्दत्तायुर्दाय-स्त्रिगुणः यस्तूच्चराशौ भवति तस्यापि त्रिगुणः कार्यो द्वित्रिगुणत्वे सकृत्त्रिगुण सकृदेकवारं त्रिगुणं वक्तव्यम्।।३।।

जो ग्रह वर्गोत्तमांश, स्वराशि, स्वद्रेष्काण अथवा स्वनवांश में हो तो उक्तविधि से साधित आयु को द्विगुणित और यदि ग्रह वक्रगति या अपने उच्च में हो तो त्रिगुणित एवं यदि दोनों योग (द्विगुणत्व-त्रिगुणत्व) प्राप्त हो तो केवल एक ही बार त्रिगुणित कर देना चाहिए।।३।।

उदाहरण- यथा स्पष्ट सूर्य ०।२०।१०।५ अपने उच्च में है, अतः इसकी पूर्व साधित आयु वर्षादि ६।०।१८।९।० को त्रिगुणित करने से १८।१।२४।२७।० यह वर्षादि स्पष्ट सूर्य की आयु हुई।

ग्रहों की आयु में हानि-

त्र्यंशमवक्रो रिपुभे नीचेऽर्धं सूर्यलुप्तकिरणश्च।
क्षपयति स्वायुर्दायान्नास्तं यातौ रविजशुक्रौ।।४।।

सं० टी०- शत्रुक्षेत्रस्थितग्रहायुर्दायहानिमाह। भौमं वर्जयित्वा शत्रुराशिव्यवस्थितो ग्रहः स्वदत्तायुषस्त्रिभागमपहरति। यश्च स्वनीचराशौ भवति स स्वदत्तायुषोऽर्धमपहरति। अस्तंगतो ग्रहोऽर्धं हरति। शुक्रशनैश्चरौ अस्तंगतावपि नार्धं हरतः।।४।।

यदि मार्गी ग्रह अपने शत्रु की राशि में हो तो उक्तविधि से साधित आयु का तृतीयांश घट जाता है और यदि अपने नीच या सूर्य सान्निध्य से अस्त हो तो आधा परञ्च शनि और शुक्र यदि अस्त भी हो तो उसकी आयु की हानि नहीं होती।।४।।

विशेष- कोई 'वक्र' शब्द से मङ्गल का ग्रहण किये हैं, ऐसा पाठ असङ्गत

है क्योंकि पूर्वश्लोक 'वक्रोच्चयोस्त्रिगुणितं' से सिद्ध हो चुका है कि वक्रीग्रह के आयुर्दाय की वृद्धि ही होती है। इसलिए अवक्र अर्थात् वक्रगति ग्रह को छोड़कर अन्य (मार्गी) ग्रह पाठ ही युक्तिसङ्गत है।

चक्रोत्तरार्धस्थित ग्रहों की आयु में हानि-

सर्वार्धत्रिचतुर्थेन्द्रियर्त्तभागान् व्ययाद्धरन्त्यशुभाः।
सन्तोऽर्धमतो वामं बलवानेकर्क्षगेष्वेकः।।५।।

सं० टी०- चक्रपातेनाप्यायुषो हानिमाह। यः पापग्रहो वामं विपरीतं सप्तमभवनं यावल्लग्नाद्द्वादशे स्थितः स सर्वमायुर्दायं हरति। यः एकादशे स अर्धम्, यो दशमे स त्रिभागं; यः नवमे स चतुर्थांशः योऽष्टमे स पञ्चमांशं, सप्तमस्थः षडेभागमेवं हरति पापाः। शुभास्तु सौम्यग्रहो लग्नाद्द्वादशस्थः स्वादायुषोऽयं हरति, एकादशस्थश्चतुर्भागं, दशमस्थः षड्भागं नवमस्थोमाष्टभागं, अष्टमस्थो दशमभागं सप्ताष्टमस्थो द्वादशभागं, द्वादशैकादशदशमनवमाष्टमसप्तमेषु यावत् बहूषु ग्रहेषु एकर्क्षगेषु यो बलवान्स एवं यथोक्तं स्वायुर्दायमपहरति, नान्यः।।५।।

द्वादशभाव से उत्क्रम (अर्थात् १२,११, १०, ९, ८, ७ भाव पर्यन्त) में पापग्रह हो तो क्रम से गणितागत आयु का सम्पूर्ण, आधा, तृतीयांश, चतुर्थांश, पञ्चमांश और षष्ठांश घट जाता है और इन्हीं स्थानों में यदि शुभग्रह हो तो पापग्रह की अपेक्षा आधा (अर्थात् सम्पूर्ण के स्थान में आधा, आधे के स्थान में चतुर्थांश इत्यादि) का नाश होता है। एवं यदि उक्त स्थानों में से किसी एक ही स्थान में दो या अधिक ग्रह हों तो उनमें सब से जो बली हो केवल उसी एक ग्रह की आयु का ह्रास होता है, सब का नहीं।५।

इति लघुजातके आयुर्दायाध्यायः।।९।।

*

अथ दशान्तर्दशाध्यायः ।।१०।।

दशाप्रमाण-

शोध्यक्षेपविशुद्धः कालो ये येन जीविते दत्तः ।
स विचिन्त्या तस्य दशा स्वदशासु फलप्रदाः सर्वे ।।१।।

सं० टी०- अथ दशाप्रमाणमाह। प्रथमं ग्रहस्यायुर्दायः कर्तव्यः। ततस्तस्य चक्रपातेन हानिर्या भवति सा कार्या। यत्र द्वित्रिगुणितं भवति तदपि कार्यम्। एवं कृते शोध्यक्षेपविशुद्धः कालो भवति। शोध्यो हानिः क्षेपो गुणना तेन शुद्ध कालो येन ग्रहेण जीविते तत्रस्तावत्कालं तस्य ग्रहस्य सम्बन्धिनी दशा भवेदेवं विचिन्त्य शुभाऽशुभफलं ग्रहाणां दशाजं बोध्यम्।।१।।

उक्तआयुर्दायोक्तविधि से हानि और वृद्धि करके जिस ग्रह की जितनी स्पष्टायु वर्षादि हो, वही उस ग्रह की वर्षादि दशा कहलाती है। एवं ग्रह अपनी दशा में अपने-अपने स्वभावानुसार फल देते हैं।१।

दशाक्रम -

लग्नार्कशशाङ्कानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत् प्रथमा ।
तत्केन्द्रपणफरापोक्लीमगतानां बलाच्छेषाः ।।२।।

सं० टी०- ग्रहदशाप्रमाणे क्रममाह। लग्नार्कचन्द्राणां मध्ये यो बलवांस्तस्य प्रथमा दशा भवेत्। ततः प्रथमदशापतेर्यावन्तो ग्रहाः केन्द्रस्था भवन्ति तेषां बलाधिक्येन भवेद्दशा। एवं सर्वेषां केन्द्रस्थानां कल्पयित्वा ततः पणफरस्थांनामनेन क्रमेण कर्तव्या। ततः आपोक्लिमस्थानगतानां तेनैव क्रमेण दशा भवति। शेषां बलात् ज्ञातव्याः।।२।।

लग्न, सूर्य और चन्द्र, इन तीनों में जो अधिक बली हो- प्रथम उसी की दशा प्रारम्भ होती है। तदनन्तर उससे केन्द्रस्थानस्थित ग्रहों की, तदनन्तर पणफरस्थानस्थित ग्रहों की पश्चात् आपोक्लिमस्थ ग्रहों की दशा बल क्रम से होती है।।२।।

ग्रहों की दशा में शुभाशुभता-

मित्रोच्चस्वगृहांशोपगतानां शोभना दशाः सर्वाः।
स्वोच्चाभिलाषिणामपि न तु कथितविपर्ययस्थानाम्।।३।।

सं० टी०-एवं दशापतौ ज्ञाते तद्दशाशुभाशुभज्ञानमाह। जन्मकाले यो ग्रहो मित्रक्षेत्रस्थः, यश्च स्वोच्चस्थः, यश्च स्वक्षेत्रस्थः, स्वनवांशगतः तस्य दशा शोभना। उच्चाद् द्वादशराशौ नवमनवांशस्थ उच्चाभिलाषी मित्रस्थः शत्रुनवांशस्थः नीचस्थः नीचाभिलाषी तस्य दशा दुष्टा अशुभा अन्यस्थानस्थितस्य ग्रहस्य मध्या दशा भवति।।३।।

जो ग्रह अपने मित्र, अपने उच्च, अपनी राशि, अपने नवांश में हो अथवा अपने उच्चस्थानाभिलाषी (अर्थात् मार्गी ग्रह उच्चस्थान से द्वादश में और वक्रीग्रह उच्चस्थान से द्वितीय में स्वोच्चाभिलाषी कहलाता है) हो, उन सबों की दशा-अन्तर्दशा शुभफलप्रद होती है। इनसे भिन्न (अर्थात् नीच, शत्रु आदि गृह में) रहने वाले की दशा अशुभफलप्रद होती है।।३।।

लग्न की दशा में शुभाशुभता-

होरादशा दृकाणैः पूजितमध्याधमा चरे क्रमशः।
द्विशरीरे विपरीता स्थिरे तु पापेष्टमध्यफला।।४।।

सं० टी०-होरा लग्नं तस्य दशा द्रेष्काणैः शुभाशुभ ज्ञेया। तत्र चरराशौ लग्नगते प्रथमद्रेष्काणे जातस्य पूजिता दशा भवेत्। द्वितीये मध्यफला, तृतीये अधमा नेष्टा। अनुक्रमेण द्विशरीरे विपरीता तेन द्विस्वभावराशौ लग्नगते प्रथमद्रेष्काणे अधमा, द्वितीयद्रेष्काणे मध्यफला, तृतीयद्रेष्काणे पूजिता शुभा। स्थिरे स्थिरराशौ लग्नगते प्रथमद्रेष्काणे पापा, द्वितीये इष्टफला, तृतीये द्रेष्काणे मध्यफला बोध्या।।४।।

चरराशि लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो श्रेष्ठ, द्वितीय द्रेष्काण हो तो मध्यम, तृतीय द्रेष्काण हो तो अधम फल देनेवाली लग्न की दशा

होती है। द्विस्वभावराशि लग्न में इसका उल्टा (अर्थात् प्रथम द्रेष्काण में अधम, द्वितीय में मध्यम, तृतीय में शुभफल) होता है। एवं स्थिर लग्न में प्रथम द्रेष्काण में अशुभ, द्वितीय में श्रेष्ठ, तृतीय द्रेष्काण में मध्यम फल देने वाली लग्नदशा समझनी चाहिए।।४।।

अन्तर्दशाधिकारी-

एकर्क्षेऽर्धं त्र्यंशं त्रिकोणयोः सप्तमे तु सप्तांशम्।

चतुरस्त्रयोस्तु पादं पाचयति गतो ग्रहः स्वगुणैः।।५।।

सं० टी०- अन्तर्दशामाह। येन ग्रहेण स यो ग्रहः एकर्क्षे स्थितः स तत्तद्दशायां अर्धमपहृदय स्वैर्दशागुणैः पाचयति। दशापतेस्त्रिकोणयोः स्थितो ग्रहः दशापतिदत्तदशायाः त्र्यंशं पाचयति। दशापते सप्तमे स्थाने स्थितो ग्रहो दशापतिदत्तदशाकालात्सप्तमांशं स्वैर्गुणैः पाचयति। दशापतेश्चतुर्थस्थानस्थोऽष्टमस्थानस्थो वा ग्रहपादं चतुर्थांशं दशापति-दत्तकालादपहृत्य स्वगुणैः पाचयति। न केवलं ग्रहाल्लग्नादपि एतेषु स्थानेषु समवस्थितो ग्रहः यथोक्तमांशं पाचयति यद्येकस्या बहवो भवन्ति तदा तेषु मध्ये यो बलवान् स एव पाचयति नान्यः।।५।।

(सम्पूर्ण आयु का मालिक दशापति होता है, इसलिए उसका भाग पूरा १/१है) दशापति के साथ जो ग्रह हों उनमें सबसे बली केवल एक ग्रह आधे १-२ का, त्रिकोण (९-५) में रहने वाले में बली एक ग्रह तृतीयांश १-३ का, दशापति से सप्तम में रहने वाले में बली एक ग्रह सप्तमांश १-७ का और चतुरस्त्र (४-८) में रहने वाले में केवल एक बली ग्रह चतुर्थांश १-४ का अन्तर्दशा पाचनाधिकारी होता है और अपने-अपने गुणानुसार फल भी देता है।।५।।

विशेष- कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ साथ में या त्रिकोण आदि स्थित ग्रहों में केवल एक ही ग्रह पाचक होता है, सब नहीं। इससे सिद्ध होता है कि-यदि दशापति से १।५।९।७।४।८ इन स्थानों में कोई ग्रह नहीं हो तो उस

ग्रह की दशा में दूसरे ग्रह की अन्तर्दशा नहीं होगी, अर्थात् स्वयं दशापति ही अन्तर्दशापति भी होगा। कहा भी है-

"एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण।
एकः स एव हर्ता नान्ये तत्र स्थिता विहगाः।"

अन्तर्दशा साधन प्रकार-

भागाः सदृशच्छेदैर्विवर्जिताः संयुता दशाच्छेदाः।
प्रत्यंशा गुणकाराः पृथक् पृथक् चान्तर्दशास्ताः ।।६।।

सं० टी०- 'भागादौ तु सदा रूपं विन्यस्य सदृशोकृतम्।
सर्वच्छेदांशसयोगैश्छिद्यादन्तर्दशा फलम्।।
रूपस्थानगतैरशैर्यल्लब्धं संगुणीकृतम्।
दशा ह्यंतर्दशा प्रोक्ता नित्यं यवनसूरिभिः।।'

दशापते 'रेकर्क्षेऽर्धत्र्यंशं त्रिकोणयो' रित्यादि दर्शितस्थानेषु यो ग्रहो भवति तत्स्थानोक्तसंस्था भागाः रूपस्याधः स्थाप्याः दशापतेरादावेव रूपं परिकल्पयेत्। ततः परस्परच्छेदहता कार्याः, एकैकं प्रत्येकेन छेदेन गुणयेत्। एवं कृते भागाः सदृशच्छेदा भवन्ति। उपरिगता राशयो दशापिण्डस्य पृथक् पृथक् गुणकारा भवन्ति। एकीकृताश्च सर्वेषां एक एवं भागहारः एवं गुणितविभक्ता ग्रहदत्तायुः पिण्डात् पृथक् पृथक् अन्तर्दशा लभ्यते। तद्यथा-

१	१	१	१	१
१	२	३	७	४

भागाः एते भागाः परस्परच्छेदेन हताः सांशाः कार्या यावत्सर्वं एवं समच्छेदा भवन्ति कृता एवंविधा जाताः एते एव संयुक्ता जाताः ३७४ छेदाः

१६८	८४	५६	२४	४२
६८	१६८	१६८	१६८	१६८

ग्रहदत्तायुःपिण्डं, वर्षमासदिवसघटिकांतं संस्थाप्य पृथक् पृथक् गुणकारेण गुणयेत् घटिकानां षष्ट्या भागमपहृत्य दिवसेषु क्षिपेत्, दिवसानां त्रिंशता भागमपहृत्य मासेषु क्षिपेत् मासानां द्वादशभिर्भागमपहृत्यं वर्षेषु क्षिपेत्, अवशेषं सर्वं स्थाप्यं ततो वर्षस्थानेषु भागहारेण ३७४ भाग-

मपहृत्यावाप्तं वर्षाणि। शेषं द्वादशभिः सगुण्यावस्थितान् मासान् संयोज्य छेदेन विभज्य अवाप्तं मासाः वर्षाणामधः स्थाप्याः। तदेवं शेषं त्रिंशता संगुण्यावस्थितानि दिनानि संयोज्य छेदेन विभज्यावाप्तं दिवसाः ते मासानामधः स्थाप्याः। तदेवं शेषं षष्ट्या संगुण्यावस्थिता घटिका संयोज्य छेदेन विभाज्यावाप्तं घटिका दिवसानामधः स्थाप्याः एवं यथासम्भव सर्वेषां ग्रहाणामन्तर्दशाः कार्याः। दशाविभागक्रमेणैवान्तर्दशाविभागकल्पना कर्तव्या। विदशोपदशाविभागोऽप्येवमेव।।६।।

पूर्वश्लोकानुसार जिन ग्रहों का अन्तर्दशाधिकार (अर्ध आदि भाग) प्राप्त हो, दशापति सहित उन ग्रहों के सब भागों का समच्छेद करके नीचे छेदों को त्याग कर देना, तथा ऊपर जो अंश पृथक्-पृथक् हों उन सबों को दशावर्ष के गुणक समझे तथा दशामान को पृथक्-पृथक् गुणक से गुणा कर भाजक (गुणकों के योग) से भाग देने से अन्तर्दशा होती है।।६।।

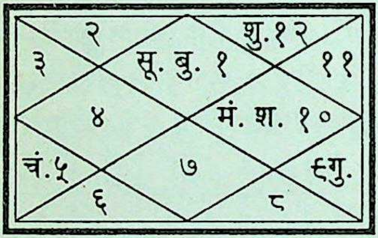

उदाहरण- यथा इस कुण्डली में लग्न, सूर्य और चन्द्र इनमें सूर्य स्वोच्च का होने से बलवान् है, तो प्रथम सूर्य की दशा, तदनन्तर सूर्य में केन्द्रस्थ लग्न, मङ्गल, शनि, बुध इनकी बलक्रम से दशायें होंगी, तदनन्तर पणफरस्थ चन्द्रमा की, तदनन्तर आपोक्लिमस्थ गुरु और शुक्र की दशा होगी।

उक्तकुण्डली के अनुसार सूर्य की दशा मान यदि ११ वर्ष है, तो साथ में रहनेवाला लग्न-बुध में जो बली हो उस एक को १\२, त्रिकोणस्थ चन्द्र, बृहस्पति में जो बली हो उस एक को १\३, सप्तम में कोई भी ग्रह नहीं है अतः सप्तमांश १\७, का पाचक कोई भी नहीं हुआ, एवं चतुरस्र (४।८) में भी कोई नहीं है अतः चतुर्थांश का भी पाचक कोई नहीं हुआ। इस प्रकार सूर्य की दशा में क्रम से अन्तर्दशा पाचक सूर्य १\१, साथ में रहने वाले लग्न-बुध में बली लग्न है अतः लग्न को १\२, एवं त्रिकोणस्थ चन्द्र-बृहस्पति में बृहस्पति बलवान् है,

अतः बृहस्पति को १\३, ये तीन ही अन्तर्दशा पाचनाधिकारी होंगे। १\१ १\२ १\३ समच्छेद करने से ६\६ ३\६ २\६ = ११\६ अब सूर्य के दशा वर्ष (११) को सूर्य के गुणक ६ से गुणा कर हर (११) का भाग दिया तो लब्धि वर्ष ६ सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तदर्शा हुई। फिर दशावर्षादि को लग्न के गुणक ६, ३ से गुणाकर हर (११) का भाग दिया तो लब्धि वर्ष ३ लग्न की, पुनः दशा-वर्षादि को बृहस्पति के गुणक २ से गुणाकर हर (११) का भाग दिया तो लब्धि वर्ष २ बृहस्पति की अन्तर्दशा हुई।

इस प्रकार सूर्य वर्ष ६, लग्न वर्ष ३, बृहस्पति वर्ष २ का योग सूर्य की दशा तुल्य सिद्ध होती है।

इति लघुजातके दशान्तर्दशाऽध्यायः।।१०।।

अथाष्टकवर्गाध्यायः।।११।।

सूर्य का अष्टकवर्ग—

केन्द्रायाष्टद्विनवस्वर्कः स्वादार्किभौमगतश्च शुभः।
षट्सप्तान्त्येषु सितात् षडायधीधर्मगो जीवात्।।१।।
उपचयगोऽर्कश्चन्द्रादुपचयनवमान्त्यधीगतःसौम्यात्।
लग्नादुपचयबन्धुव्ययस्थितः शोभनः प्रोक्तः।।२।।

सं०टी०—अथाष्टकवर्गः। जन्मकाले यात्रार्को व्यवस्थितः तस्मात्स्थानात्केन्द्रायाष्टद्विनवसु१।४।७।१०।११।८।२।९ अर्कः शुभः, आर्किभौमाभ्यां एतेषु स्थानेषु शुभः। षट्सप्तान्त्येषु सितात् ६।७।१२ एतेषु शुक्राच्छुभः। षडायधोधर्मगो जीवात् ६।११।५।९ एतेषु स्थानेषु गुरोः सकाशाच्छुभः। चन्द्रादुपचयगाः ३।६।११।१० एतेषु चन्द्राच्छुभः। सौम्या दुपचयनवान्त्यधीयुतः ३।६।११।१०।९।१२।५ एतेषु सौम्याच्छुभः। लग्ना दुपचयबन्धुव्यवस्थितः ३।६।११।१०।४।१२ एतेषु लग्नात् शुभः। इति सूर्यः।१-२।

जन्मलग्न कुण्डली में सूर्य जिस स्थान में हो वहाँ से १।४।७।१०।११।८।२।९ इन स्थानों में शुभ हैं, एवं शनि और मङ्गल से भी इन्हीं स्थान में सूर्य को शुभ समझना। इसी प्रकार शुक्र से ६।७।१२ में, बृहस्पति

६।११।५।९ में, चन्द्र से ३।६।१०।११ में, बुध से ३।६।१०।११। ९।१२।५ तथा लग्न से ३।६।१०।११।४।१२ इनमें सूर्य शुभ है। अर्थात् ये स्थान शुभ हैं, इनसे भिन्न स्थान अशुभ है।।१-२।।

चन्द्र का अष्टकवर्ग-

शश्युपचयेषु लग्नात्साद्यमुनिः स्वात्कुजात्स्वनवधीषु।
सूर्यात् साष्टस्मरगस्त्रिषडायसुतेषु सूर्यसुतात्।।३।।
ज्ञात्केन्द्रत्रिसुतायाष्टगो गुरोर्व्ययायमृत्युकेन्द्रेषु।
त्रिचतुःसुतनवदशमद्युनायगश्चन्द्रमाः शुक्रात्।।४।।

सं० टी०- चन्द्रो लग्नात् ६।६।१०।११ एतेषु शुभः। स्वात् स्वस्थानात् प्रथमसप्तमसहितेषूपचयेषु ३।६।११।१०।१।७ एतेषु शुभः। कुजात्स्वनवधीसहितेषूपचयेषु ३।६।११।१०।२।९।५ एतेषु शुभः। सूर्यात्साष्टस्मरगः ३।६।११।१०।८।७ एतेषु शुभः। शनैश्चरात् त्रिषडायसुतेषु ३।६।११।५ एतेषु शुभः। बुधात् १।४।७।१०।३।५। ११।८ एतेषु शुभः। गुरोः १२।११।८।१।४।७।१० एतेषु शुभः। शुक्रात् ३।४।५।९।१०।७।११ एतेषु शुभ। इति चन्द्रः।।३-४।।

लग्न से ३।६।१०।११ इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है। अपने अधिष्ठित स्थान से १।७।३।६।१०।११ में, मङ्गल से २।९।५।३।६।१०।११ में, सूर्य से ८।७।३।६।१०।११ में, शनि से ३।६।११।५ में, बुध से १।४।७।१०।३।५।११।८ में, बृहस्पति से १२।११।८।१।४।७।१० में तथा शुक्र से ३।४।५।९।१०।७।११ इनमें चन्द्रमा शुभ है।।३-४।।

मङ्गल का अष्टकवर्ग-

भौमः स्वादायस्वाष्टकेन्द्रगस्त्र्यायषट्सुतेषु बुधात्।
जीवाद्दशाय - शत्रु - व्ययेष्विनादुपचय - सुतेषु।।५।।
उदयादुपचयतनुषु त्रिषडायेष्विन्दुतः समो दशमः*।
भृगुतोऽन्त्यषडष्टायेष्वसितात् केन्द्रायनववसुषु।।६।।

सं० टी०- भौमः स्वस्थानतः ११।२।८।१।४।७।१० एतेषु शुभः। बुधात् ३।११।६।५ एतेषु शुभः। जीवात् १०।११।६।१२ एतेषु शुभः। सूर्यादुपचयसुतेषु ३।६।११।१०।५ एतेषु शुभः। भौमो लग्नात् ३।६।११।१०।१ एतेषु शुभः। इन्दुतः ३।६।११ एतेषु शुभः। चन्द्राद्दशमे समः न शुभो नाप्यशुभः। शुक्रात् १२।६।८।११ एतेषु शुभः। शनैश्चरात् १।४।७।१०।११।९।८ एतेषु शुभः। इति भौमः।५-६।

मङ्गल अपने अधिष्ठित स्थान से ११।२।८।१।४।७।१० इन स्थानों में शुभ है। बुध से ३।११।६।५ में, बृहस्पति से १०।११। ६।१२ में, सूर्य से ३।६।१०।११।५ में, लग्न से ३।६।१०।११।१ में, चन्द्रमा से ३।६।११ में, शुक्र से १२।६।८।११ में, तथा शनि से १।४।७।१०।११।९।८ इनमें मंगल शुभ है।।५-६।।

* 'समो दशमः' अर्थात् मङ्गल चन्द्रमा से १० वें स्थान में सम (न शुभ न अशुभ=फलशून्य) है-ऐसा पाठ ग्रन्थकार का बनाया नहीं हो सकता, क्योंकि अपने ही पूर्व ग्रन्थ बृहज्जातक में वराहमिहिर ने अष्टकवर्गाध्याय में कहीं भी सम स्थान की चर्चा नहीं की है। मङ्गलाष्टक वर्ग में 'चन्द्राद्दिग्विफलेषु' जो यह पाठ है-प्रतीत होता है कि आद्य टीकाकार भट्टोत्पल ने प्रमादवश दशमरहितेषु न समझकर फलशून्य समझकर (समो दशमः) ऐसा पाठ बना दिया है। जिसे ही अब तक के समस्त टीकाकारजन दोहराते चले आ रहे हैं। -वस्तुतः अत्र-

त्रिषडायेष्विन्दुतः शुभः प्रोक्तः। इति पाठः समुचितः।

बुध का अष्टकवर्ग-

सौम्योऽन्त्यषण्णवायात्मजेष्विनात् स्वात् त्रितनुदशयुतेषु।
चन्द्राद्द्विरिपुदशायाष्टसुखगतः स्वात् सादिषु विलग्नात्।।७।।
प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु सितात् त्रिधीसमेतेषु।
साशास्मरेषु सौरारयोर्व्ययायरिपुवसुषु गुरोः।।८।।

सं० टी०-बुधः सूर्यात् १२।६।९।११।५ एतेषु शुभः। स्वस्थानात् १२।६।९।११।५।३।१।१० एतेषु शुभः। चन्द्रात् २।६।१०।११। ८।४ एतेषु शुभः। चन्द्रात् २।६।१०।११।८।४ एतेषु शुभः। लग्नात् २।६।१०।११।८।४।१ एतेषु शुभः। बुधः शुक्रात् १।४।११। २।८।९।३।५ एतेषु शुभः। शनैश्चरात् १।४।११।२।८।९। ३।५।१०।७। एतेषु शुभस्तथा भौमात् १।४।११।२।८।९।३। ५।१०।७ एतेषु शुभः। जीवात् १२।११। २।८ एतेषु शुभः। इति बुधः।।७-८।।

सूर्य से १२।६।९।११।५ इन स्थानों में बुध शुभ है तथा अपने आश्रित स्थान से १२।६।९।११।५।३।१।१० में, चन्द्रमा से २।६।१०।११।८।४ में, लग्न से, २।६।१०।११।८।४।१ में, शुक्र से १।४।११।२।८।९।३।६ में, शनि और मङ्गल से १।४।११।२।८।९।३।५।१०।७ में तथा बृहस्पति से १२।११।६।८ इनमें बुध शुभ है।।७-८।।

गुरु का अष्टकवर्ग-

जीवो भौमाद द्व्यायाष्टकेन्द्रगोऽर्कात्सधर्मसहजेषु ।
स्वात् सत्रिकेषु शुक्रान्नवदशलाभस्वधीरिपुषु ।।९।।
शशिनः स्वरत्रिकोणार्थलाभगस्त्रिरिपुधीव्ययेषु यमात्।
नवदिक्सखाद्यधीस्वायशत्रुषु ज्ञात्सकामगो लग्नात्।।१०।।

सं० टी०-जीवो भौमात् २।११।८।१।४।७।१० एतेषु शुभः। सूर्यात् २।११।८।१।४।७।१०।९।३ एतेषु शुभः। स्वस्थानात् २।११।८।१।४।७।१०।३ एतेषु शुभः। शुक्रात् ९।१०।११। २।५।६ एतेषु शुभः। जीवः शशिनः ७।९।५।२।११ एतेषु शुभः। शनैश्चरात् ३।६।१२।२ एतेषु शुभः। बुधात् ९।१०।४।१।५। २।११।६ एतेषु शुभः। लग्नात् ९।१०।४।१।५।२।११।६।७

एतेषु शुभः। इति गुरुः।। ९-१०।।

बृहस्पति जन्म कुण्डली स्थित मङ्गल से २ । ११ । ८ । १ । ४ । ७ । १० में शुभ होता है। इसी प्रकार सूर्य से ९ । ३ । २ । ११ । ८ । १ । ४ । ७ । १० में, अपने आश्रित स्थान से ३ । २ । ११ । ८ । १ । ४ । ७ । १० में, शुक्र से ९ । १० । ११ । २ । ५ । ६ में चन्द्रमा से ७ । ५ । ९ । २ । ११ में, शनि से ३ । ६ । ५ । १२ में, बुध से ९ । १० । ४ । १ । ५ । २ । ११ । ६ में तथा लग्न ७ । ९ । १० । ४ । १ । २ । ११ । ६ इनमें बृहस्पति शुभ है। ९-१०।

शुक्र का अष्टकवर्ग-

शुक्रो लग्नादासुतनवाष्टलाभेषु सव्ययश्चन्द्रात् ।
स्वात्सदिगसितात्त्रिसु खात्मजाष्टदिग्धर्मलाभेषु ।।११।।
वस्वन्त्यायेष्वर्कान्नवदिगलाभाष्टधीस्थितो जीवात् ।
ज्ञास्त्रिसुतनवायारिष्वायसतापोऽक्लिमेषु कुजात् ।।१२।।

सं० टी०-शुक्रो लग्नात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ९ । ८ । ११ एतेषु शुभः, चन्द्रात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ९ । ८ । ११ । १२ एतेषु शुभः, स्वात् स्वस्थानात् १ । २ । ३ । ४ । ५ । ९ । ८ । ११ । १० एतेषु शुभः, शनैश्चरात् ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । १० । ११ एतेषु शुभः। शुक्रः सूर्यात् ८ । १२ । १० एतेषु शुभः। जीवात् ९ । १० । ११ । ८ । ५ एतेषु शुभः। ज्ञाद् बुधात् ३ । ५ । ९ । ११ । ६ एतेषु शुभः भौमात् ११ । ५ । ३ । ६ । ९ । १२ एतेषु शुभः। इति शुक्रः।। ११-१२।।

शुक्र लग्न से १ । २ । ३ । ४ । ५ । ९ । ८ । ११ स्थान में शुभ होता है। चन्द्रमा से १ । २ । ३ । ४ । ५ । ९ । ८ । ११ । १२ में, अपने आश्रित स्थान से १ । २ । ३ । ४ । ५ । ९ । ८ । ११ । १० में, शनि से ३ । ४ । ५ । ८ । १० । ९ । ११ में, सूर्य से ८ । १२ । ११ में, बृहस्पति से ९ । १० । ११ । ८ । ५ में, बुध से ३ । ५ । ९ । ११ । ६ में तथा मंगल से

११।५।३।६।९।१२ इनमें शुक्र शुभ है।।११-१२।।

शनि का अष्टकवर्ग-

स्वात्सौरिस्त्रिसुतायारिगः कुजादन्त्यकर्मसहितेषु।
स्वायाष्टकेन्द्रगोऽर्काच्छुक्रात्षष्ठान्त्यलाभेषु ।।१३।।

त्रिषडायगः शशाङ्कादुदयात्ससुखाद्यकर्मगोऽथ गुरोः।
सुतषट्व्ययायगो ज्ञात् व्ययायरिपुदिङ्नवाष्टस्थः।।१४।।

सं० टी०- शनिः स्वस्थानात् ३।५।११।६ एतेषु शुभः। कुजात् ३।५।११।६।१२।१० एतेषु शुभः। सूर्यात् २।११।८।१।४।७।१० एतेषु शुभः। शुक्रात् ६।१२।११ एतेषु शुभः। चन्द्रात् ३।६।११ एतेषु शुभः। लग्नात् ३।६।११।४।१।१० एतेषु शुभः। जीवात् ५।६।११।१२ एतेषु शुभः। बुधात् १२।११।६।१०।८।९ एतेषु शुभः। इति शनिः।।१३-१४।।

शनि अपने आश्रित स्थान से ३।५।११।६ स्थान में शुभ, मंगल से ३।५।११।६।१२।१० में, सूर्य से २।११।८।१।४।७।१० में, शुक्र से ६।१२।११ में, चन्द्र से ३।६।११ में, लग्न से ३।६।११।४।१।० में, बृहस्पति से ५।६।१२।११ में तथा बुध से १२।११।६।१०।९।८ इनमें शनि शुभ है।।१३-१४।।

अष्टकवर्ग फलनिरूपण-

स्थानेष्वेतेषु शुभाः शेषेष्वहिता भवन्ति चाष्टानाम्।
अशुभशुभविशेषफलं ग्रहाः प्रयच्छन्ति चारगताः।।१५।।

सं० टी०-स्थानेष्वेतेषु शुभा इति। ते ग्रहाः एतेषु स्थानेषु पूर्वोक्तेषु हिताः शेषेषु अशुभाः। तत्र शुभाऽशुभविषममन्तरं कृत्वा यद्विशिष्यते तद्वशात् शुभाऽशुभं वाच्यम्। तदैव ग्रहाः राशौ राशौ चारतः फलं प्रयच्छन्ति एतदुक्तं भवति। केन्द्रायाष्टद्विनवस्वित्यनेन पाठेन यान्युक्तानि

तेषु शोभनं फलं शेषेषु अशोभनम्। यानि शुभस्थानानि गदितानि तानि बिन्दूपलक्षितानि कार्याणि यानि शुभानि तानि रेखोपलक्षितानि, ततः इष्टानिष्टयोर्विशेषं कृत्वा यदधिकं भवति, तत्फलं ज्ञेयम्। एवमेकत्र मिश्रितानि अष्टौ फलानि भवन्ति। यत्र शुभाऽशुभयोः साम्यं तत्र समत्वं ज्ञेयम्। यत्र विन्द्वष्टकं जातं तत्र शुभं पूर्णम्। यत्र षड्बिन्दवः तत्र पादफलं ज्ञेयम्। एवमष्टकवर्गः सर्वेषां करणीयः।

बिन्दोरधिके शुभदं रेखाऽधिके नैव शोभनं भवति।
विफलं गोचरगणितमष्टकवर्गेण निर्दिष्टम्॥१५॥

इस प्रकार जिस ग्रह के लिए जहाँ-जहाँ से जो स्थान कहे गये हैं- वे स्थान शुभफलप्रद और उनसे भिन्न स्थान अशुभ समझना। एवं लग्न सहित सातों ग्रह के स्थान में शुभ और अशुभसूचक चिह्न लगाना, इस प्रकार शुभ और अशुभ मिलकर प्रत्येक-प्रत्येक राशि में आठ (८) चिह्न होंगे, उनमें जिस-जिस राशि में शुभ चिह्न अधिक हो, चारवश उस-उस राशि में ग्रह के जाने पर शुभफल, अधिक अशुभ सूचक चिह्न में जाने से अशुभफल समझना॥१५॥

विशेष- इस प्रकार अष्टक वर्ग कुण्डली में शुभस्थान में रेखा (।) और अशुभ स्थान में विन्दु (०) की कल्पना करनी चाहिये। यहाँ जिस राशि में १ से ३ तक रेखा हो वहाँ अशुभ, ४ में मध्यम और ४ से अधिक रेखायें होने पर उत्तरोत्तर शुभफल समझना। *कहा भी है-*

'कष्टं स्याच्चैकरेखायां द्वाभ्यामर्थक्षयो भवेत्।
त्रिभिः क्लेशं विजानीयाच्चतुर्भिःसमता मता।
पञ्चभिः क्षेममारोग्यं षड्भिरर्थागमो भवेत्।
सप्तभिः परमानन्दमष्टाभिः सर्वकामदम्॥'

इस प्रकार गोचर से ग्रहों के शुभत्व और अशुभत्व जानना, क्योंकि जहाँ केवल चन्द्र से जो ग्रहशुद्धि कही गई है उसके अनुसार उस ग्रह की शुद्धि नहीं होने पर भी तत्काल में उक्तअष्टकवर्गों की शुद्धि से शुद्ध समझी जाती है।

यथा-मेष राशिवालों के लिये गोचर से वृश्चिक राशि का गुरु अष्टम होने से अशुभ कहा गया है, किन्तु यदि गुर्वष्टकवर्ग कुण्डली में वृश्चिक राशि में अधिक शुभ (।) चिह्न पड़ा हो तो गुरुशुद्धि ही समझी जाती है।

विशेष ज्ञातव्य- इस ग्रन्थ में संस्कृत टीकाकार भट्टोत्पल ने उपरोक्तअपनी टीका में शुभ के स्थान में बिन्दु (०) और अशुभ में ही रेखा (।) चिह्न की और मैंने जो भाषा-विशेषादि में विपरीत (शुभ में रेखा और अशुभ में बिन्दु) चिह्न की जो कल्पना की इसका अभिप्राय मात्र बहु प्रचलित (मानसागरी आदि ग्रन्थों में प्रचलित) होने के नाते ही की है।

इति लघुजातके अष्टकवर्गाध्यायः ।।११।।

*

अथ प्रकीर्णाध्यायः ।।१२।।

अनफा, सुनफा, दुरुधरा, केमद्रुमयोग-

रविवर्ज्यं द्वादशगैरनफा चन्द्राद् द्वितीयगैःसुनफा ।
उभयस्थितैर्दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञकोऽतोऽन्यः ।।१।।

सं० टी०- अथ प्रकीर्णाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रादौ चन्द्रयोग-प्रकरणम्। रविवर्ज्यं सूर्यं वर्जयित्वा चन्द्राद् द्वादशे स्थाने भौमबुधजीवसित-सौराणामन्यतमो भवति तदा अनफा नामयोगो भवति। अत्र रविवर्ज्य-मित्युक्तम्। तत्रादित्यो योगकर्तृकग्रहगणनया न गण्यते। अथ तेषामेव ग्रहाणां मध्ये कश्चिच्चन्द्राद् द्वितीयस्थाने भवति तदा सुनफानाम योगो भवति। अथ चन्द्राद् द्वितीयद्वादशे स्थाने त एव ग्रहा भवन्ति तदा

दुरुधरायोगः। यदि चन्द्राद् द्वितीयद्वादशयोः स्थानयोरुभयोरपि भौमादीनां मध्ये कश्चिन्न भवति तदा केमद्रुमयोगो भवति।।१।।

सूर्य को छोड़कर अन्य (मङ्गलादि) ग्रह जन्मकालिक चन्द्रमा से १२वें स्थान में हो तो अनफा, द्वितीय में हो तो सुनफा, यदि दोनों (१२।२) स्थान में हो तो दुरुधरा एवं यदि इन दोनों (१२।२) में से किसी भी स्थान में कोई ग्रह न हो तो केमद्रुम नाम का योग होता है।१।

अनफादि योग के फल-

सच्छीलं विषयसुखान्वितं प्रभुं ख्यातियुक्तमनफायाम्।
सुनफायां धीधनकीर्तियुक्तमात्मार्जितैश्वर्यम्।।२।।
बहुभृत्यकुटुम्बारम्भं सुखभोगान्वितं च दौर्धरिके।
भृतकं दुःखितमधनं जातं केमद्रुमे विद्यात्।।३।।

सं० टी०- शोभनशीलं विषयसुखान्वितं इन्द्रियसुखान्वितं प्रभुं समर्थं ख्यातियुक्तं कीर्तियुक्तं एवंविधमनफायां भवति। सुनफायां धीः बुद्धि, धनं अर्थः, कीर्तिः ख्यातिः एभिर्युक्तमात्माजितैश्वर्य स्वयमर्जितार्थ विद्यात्। एवंविधं सुनफायोगे जातो भवति। अथ दुरुधराकेमद्रुमयोर्जातस्य स्वरूपमाह। बहुभृत्य बहुकुटुम्बं बहुकार्यारम्भं नित्योद्विग्नचित्तं एवं विधं दुरुधरायोगे जातं जानीयात्। भृतकमिति। भृतकं कर्मकरं दुःखितं दुःखान्वितमधनं दरिद्रम् एवंविधं केमद्रुमे जातं विद्यात्।।२-३।।

अनफा योग में उत्पन्न जातक सुन्दर शीलवाला, सब सुखों से युक्त, सामर्थ्यवान् और बड़ा यशस्वी। सुनफा में-बुद्धि, धन, कीर्ति से युक्त तथा अपने बाहुबल से ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाला। दुरुधरा में-बहुत नौकरों और कुटुम्बियों से युक्त, अनेक कार्यों को आरम्भ करनेवाला तथा सुख भोग से युक्त, रहनेवाला होता है। एवं केमद्रुमयोग में उत्पन्न जातक भृतक (मजदूरी आदि करके पेट पालनेवाला), दुःखी और दरिद्र होता है, ऐसा जानना चाहिये।।२३।।

अनफादियोगकारक ग्रहों के फल-

भौमः शूरश्चण्डो महाधनो ज्ञानवान् बुधो निपुणः ।
ऋद्धः शुक्रः सुखितो गुरुर्गुणाढ्यो नृपतिपूज्यः ।।४।।
बह्वारम्भः सौरिर्बहुभृत्यः पूजितो गुणैर्विद्धः ।
एषां गुणैः समगुणा ज्ञेया योगोद्भवः पुरुषाः ।।५।।

सं० टी०- यदा सुनफानफादुरुधराणां भौमो योगकर्ता भवति तदा चौरश्चण्डश्च भवति। चण्डस्तीक्ष्णः बुधश्चेत्तदा महाधनो ज्ञानवान् निपुणश्च। शुक्रश्चेत्तदा ऋद्धः ईश्वरः सुखी। गुरुश्चेत्तदा गुणाढ्यो राजपूज्यश्च। सौरिश्चेत्तदा बहुकार्यारम्भो बहुभृत्यः बहुसेवकः पूजितः सर्वैः सेवितः गुणैर्वृद्धश्च। एषां गुणैरिति। एषां ग्रहाणां गुणै समगुणा ज्ञेयाः। तत्र यदेव ग्रहस्य रूपमुक्तं तत्कृते अनफासुनफादुरुधरायोगे जातः पुरुषः तादृशो भवति। द्वाभ्यां कृते द्वयोर्गुणसम्बन्धं प्राप्नोति बहुभिः कृते बहुसम्बन्धीमिति।।४-५।।

अनफादि योगकारक ग्रह यदि मङ्गल हो तो मनुष्य शूर, चण्ड (साहसी) और महाधनवान्, बुध हो तो ज्ञानवान् और सब कामों को करने में विशेष चतुर; शुक्र हो तो समृद्धिवान् और सुखी, बृहस्पति हो तो गुणवान् और राजपूज्य, शनि हो तो बहुत नौकरों से युक्त, बड़े-बड़े कामों का आरम्भ करने वाला, लोगों का पूज्य और गुणों से सम्पन्न होता है। इसमें जो ग्रह योगकारक हों उन ग्रहों के गुण के समान जातक के भी गुण समझना। यदि कोई ग्रह योगकारक हों तो उन सबों के गुणों से युक्तजातक को समझना चाहिये।।४-५।।

विशेष- यहाँ संस्कृत टीका में भट्टोत्पल ने 'भौमश्चौरश्चण्डो' ऐसा पाठ रखकर टीका की है। इस प्रकार का पाठ असङ्गत होने के कारण प्रामादिक प्रतीत होता है। कारण स्वयं वराहमिहिर ने मङ्गल का गुण बृहज्जातक में-

'उत्साहशौर्य्यधनसाहसवान् महीजः' कहा है। अतः *'भौमः शूरश्चण्डो'* पाठ ही समुचित है।

सूर्य से विशेष योग-

सूर्याद् द्वितीयमृक्षं वेशिस्थानं प्रकीर्तितं यवनैः।
तच्चेष्टग्रहयुक्तं जन्मनि चेष्टासु च विलग्नम्।।६।।

सं० टी०- यस्मिन् राशावादित्यो व्यवस्थितस्तस्माद्यो द्वितीयो राशिस्तस्य वेशीति संज्ञक यवनैः प्रकीर्तितं कथितं वेशिस्था जन्मनीष्टग्रहयुक्तं प्रशस्तं चेष्टासु यात्रासु च विलग्न तदा वेशिस्थानं प्रशस्तमिष्यते।।६।।

सूर्य से द्वितीय राशि को यवनाचार्यों ने वेशिसंज्ञक कहा है। वह यदि जन्म समय में शुभग्रह (इष्ट ग्रह) से युक्तहो तो शुभफल होता है। एवं यदि यात्रा के समय उक्त स्थान में शुभग्रह हो तो यात्रा शुभदायिनी कही गयी है।।६।।

द्विग्रह योग-

यन्त्रज्ञं पापरतं निपुणं क्रूरं च शस्त्रवृत्तिं च।
धातुज्ञं च क्रमशश्चन्द्रादिभिरन्वितः सूर्यः।।७।।

*सं० टी०-*अथ द्विग्रहयोगप्रकरणम्। तत्रादावादित्ये चन्द्रादियुक्ते जातस्य स्वरूपमाह। चन्द्राद्यर्कयोगः आदित्ये चन्द्रमसा युक्तजातं यन्त्रज्ञं ज्ञेयम्। यन्त्राणि शतघ्नोप्रभृतीनि जानाति। भौमेन पापरतम्। बुधेन निपुणं कार्ये सूक्ष्मदृष्टिम्। बृहस्पतिना क्रूरम्। शुक्रेण शस्त्रवृत्तिं क्षात्रवृत्तिम्। शनैश्चरेण धातुज्ञं सुवर्णादिज्ञम्।।७।।

जन्म समय में सूर्य यदि चन्द्रमा से युक्त हो तो जातक नाना प्रकार के यन्त्रादिकों का विशेषज्ञ, मङ्गल से युत हो तो पापकर्म में रत रहनेवाला, बुध से युत हो तो सब कार्यों में निपुण, बृहस्पति से युत हो तो क्रूर (उग्र) स्वभाव वाला, शुक्र से युत हो तो अस्त्र-शस्त्रादिकों से जीविका चलानेवाला और यदि सूर्य, शनि से युत हो तो जातक धातुओं (सोना, चाँदि, ताँम्बा इत्यादि) के विशेषज्ञ अथवा इनके आभूषणादिक बनाने के कर्म में निपुण होता है।।७।।

चन्द्रोऽङ्गारकपूर्वैः कूटज्ञं प्रश्रितं कुलाभ्यधिकम् ।
वस्त्रव्यवहारज्ञं क्रमेण पौनर्भवं चापि ।।८।।

सं० टी० - चन्द्राऽङ्गारकादियुक्ते जातस्य स्वरूपमाह। चन्द्रेऽङ्गारकेण युक्ते कूटज्ञः कुलकुशलहारी भवे। बुधेन युक्ते प्रसृतं वाक्यनिपुणं प्रियवादी भवेत्। जीवेन युक्तः कुलप्रसिद्धः भवेत्। शुक्रेण युक्ते वस्त्रविक्रयज्ञः भवेत्। शनैश्चरेण युक्ते पुनर्भूपुत्रः स्यात्।।८।।

चन्द्रमा, मङ्गल से युत हो तो मायाविद्, बुध से युत हो तो विनयी, बृहस्पति से युत हो तो अपने कुल में श्रेष्ठ, शुक्र से युत हो तो कपड़े आदि का व्यापार करने में निपुण और यदि शनि से युत हो तो जातक पुनर्भू स्त्री का पुत्र होता है।।८।।

मल्लो रक्षोऽन्यस्त्रीसक्तो दुःखान्वितः कुजो ज्ञाद्यैः ।
ज्ञो जीवाद्यैर्गीतज्ञं वाग्मिनं महेन्द्रजालज्ञम् ।।९।।

सं० टी० - अङ्गारके बुधेन युक्ते जातो मल्लो भवति। जीवेन रक्षकः। शुक्रेण परदाररतः। सौरेण दुःखान्वितो भवति। बुधे गुर्वादियुक्ते जातस्य स्वरूपमाह। बुधे जीवेन युक्ते गीतज्ञो भवति। शुक्रेण वाग्मी पण्डितो भवति। शनैश्चरेण युक्ते मायाज्ञः इन्द्रजालज्ञश्च भवति।।९।।

मङ्गल यदि बुध से युत हो तो जातक मल्ल-युद्धादि में कुशल, बृहस्पति से युत हो तो दूसरों को अनेक विपदाओं से बचाने वाला, शुक्र से युत हो तो परस्त्रीगामी और शनि से युत हो तो दुःखी होता है।

एवं बुध यदि बृहस्पति से युत हो तो बालक संगीत आदि विद्या में निपुण, शुक्र से युत हो तो वक्ता और शनि से युत हो तो इन्द्रजाल विद्या का जानकार होता है।।९।।

जीवः सितेन बहुगुणमसितेन समन्वितोऽत्र घटकारम्।
स्त्रीस्वं मन्देन सितस्त्रिभिरप्येवं फलानि वदेत्।।१०।।

सं० टी०- जीवे सितादियुक्ते जातस्य स्वरूपमाह। जीवः सितेन युतो जातं बहुगुणं करोति। शनैश्चरेण समन्वितो यदा जीवः तस्मिन् योगे जातं घटकारं कुम्भकारं करोति। शुक्रशनैश्चरयोगे जातं स्त्रीधनं करोति। स्त्रीसकाशाद्धनमाप्नोति। अन्ये च स्त्रियो वल्लभत्वाद्धनं प्रयच्छन्ति। इति स्त्रीणां वल्लभत्वाद्धनागम इत्यर्थः। त्रिभिरप्येवं फलानि वदेत्। यदा ग्रहास्त्रय एव राशौ भवन्ति तदा द्विग्रहयोगवत् त्रयस्यापि फलं वक्तव्यम्। यदार्कचन्द्राङ्गारका एकराशिगतस्तदाऽऽदित्यचन्द्रयोगवत्फलमुक्तं, चन्द्राङ्गारकयोगेन यत्फलमुक्तं, आदित्याङ्गारकयोगेन च यत्फलमुक्तं तत्फलं त्रयमपि वाच्यम्। एवं यथासम्भवं ग्रहत्रयस्य फलंवाच्यम्।।१०।।

बृहस्पति यदि शुक्र से युत हो तो बहुत गुणों से युक्त, शनि से युत हो तो कुम्भकार समझना।

तथा शुक्र यदि शनि से युत हो तो जातक को स्त्री के द्वारा धन की प्राप्ति कहना।

इसी प्रकार तीन ग्रह के योग से भी ऐसें ही फल कहना।।१०।।

प्रव्रज्यायोगनिरूपणम्।

चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्यां स्वां ग्रहः करोति बली।
बहुवीर्यै रतावत्यः प्रथमा वीर्याधिकस्यैव।।११।।

सं० टी०- अथ चतुर्ग्रहयोगनिरूपणम्। यस्य जन्मनि ग्रहाश्चत्वार एकराशिगता भवन्ति स प्रव्रज्यामाप्नोति। तेषामेकराशिगतानां मध्ये यो बली भवति स त्वां प्रव्रज्यां करोति ग्रहः। बहुवीर्यैरिति। यदि बहवो ग्रहाः बलिनो भवन्ति तदा बह्वयः प्रव्रज्याः बहूनां बन्धिनीः प्रव्रज्याः प्राप्नोति। एतेषां ग्रहाणां मध्ये योऽतिवली पूर्वं तस्यैव प्रव्रज्या वक्तव्या। अन्येषां बलं विचार्य उत्तरोत्तरं प्रव्रज्यां वक्तव्या। चतुरादिष्वेकस्थेषु यदि कश्चिद् ग्रहो न बली भवति तदा जातस्य प्रव्रज्या नैव वक्तव्या।।११।।

पहले एक स्थान में ३ ग्रह तक के योग कह चुके हैं, अब यदि एक स्थान में ३ से अधिक (४, ५ आदि) ग्रह हों तो ऐसे योग को

प्रव्रज्यायोग कहते है। उनमें ग्रह अपने बलक्रम से प्रव्रज्या को देते हैं- अर्थात् यदि बहुत ग्रह बलवान् हों तो जितने ग्रह बली हों उतनी प्रव्रज्या होती है, एवं उनमें सबसे अधिक बलवान् ग्रह की प्रव्रज्या पहले, उसके बाद बलक्रम से प्रव्रज्या समझना।।११।।

विशेष- जिस योग से जातक घर छोड़कर प्रव्रजित होता है-वह प्रव्रज्या कहलाती है। तथा उक्त योगकारक ग्रहों में यदि सब ही निर्मल हों तो प्रव्रज्यायोग भंग समझना। कहा भी है-

'यावन्तो वीर्ययुता: प्रव्रज्या भवन्ति तावत्य:'।

सूर्यादिग्रहों की प्रव्रज्या-

तापसवृद्धश्रावकरक्तपटाजीविभिक्षुचरकाणाम् ।
निर्ग्रन्थानां चार्कात् पराजितै: प्रच्युतिर्बलिभि: ।।१२।।

सं० टी०- तत्र न ज्ञायते कस्य का प्रवज्या तदर्थमाह। चतुरादीनामेकस्थानां मध्यादर्के बलवति तापसो भवति। तापसो वानप्रस्थ:। चन्द्रे बलिनि वृद्धा: श्रावक: कापालिक:। भौमे बलिनि रक्तपट:। बुधे आजीवी एकदण्डी। गुरौ बलवति भिक्षु: त्रिदण्डी। शुक्रे बलिनि चरक: चक्रधर:। सौरे बलवति निर्ग्रन्थो नग्न: क्षपणक: प्रावरणरहित इत्यर्थ:। अर्कादारभ्य क्रमेण पराजितै: प्रच्युतिबलिभिरिति। चतुर्णामिकस्थानां यो बली ग्रह स चेत् ग्रहयुद्धेऽन्येन ग्रहेण पराजितो भवति तदा ग्रहोक्तप्रव्रजितो भूत्वा पुनस्तां त्यजति। एवं बहुषु बलवत्सु पराजितेषु बह्वीष्वपि प्रव्रज्यासु अवस्थितस्तास्त्यजति।।१२।।

प्रव्रज्यायोग कारक ग्रहों में सबसे बली सूर्य हो तो जातक वानप्रस्थ, चन्द्रमा बली हो तो श्रावक (कापालिक), मंगल से बौद्ध, बुध से भिक्षु (एकदण्डी), बृहस्पति से त्रिदण्डी, शुक्र से चक्रधर और यदि सबसे बली शनि हो तो नागा (वस्त्रहीन रहनेवाला) होता है। इन प्रव्रज्या कारक ग्रहों में यदि बली ग्रह किसी दूसरे ग्रह से युद्ध में

पराजित हो गया हो तो उस प्रव्रज्या को ग्रहण करके पुनः उसको छोड़कर विजयी ग्रह की प्रव्रज्या को धारण कर लेता है।।१२।।

विशेष- एक राशि में मङ्गलादि दो ग्रहों के अंश-कला तुल्य होना युद्ध कहलाता है। उनमें जो उत्तर दिशा में रहता है-वह जयी और दक्षिण दिशा वाला पराजित समझा जाता है।

प्रव्रज्यायोग में विशेषता-

दिनकरलुप्तमयूखैरदीक्षिता भक्तिवादिनस्तेषाम्।
याचितदीक्षा बलिभिः पराजितैरन्यदृष्टैर्वा ।।१३।।

सं० टी०- अत्रैव विशेष माह-चतुरादीनामेकास्थानानां यावन्तो बलिनो ग्रहास्तावन्तः प्रव्रज्यादायकस्तत्रापि बलिनां मध्ये यावन्तो रविलुप्तकिरणा अस्तमितास्तावन्तः स्वां स्वां प्रव्रज्यां न प्रयच्छन्ति। किन्तु ग्रहप्रव्रज्याप्रव्र जितानां मध्ये भक्तिं प्रयच्छन्ति। तत्र रविलुप्तकिरणोऽस्तमय एकस्मिन्नेव राशिगतेऽर्केण संयुक्तः शस्तमितो भवति। पृथग्राक्षिनामपि युक्तोऽस्तमितो भवति। याचितदीशा इति। चतुरादीनामेकस्थानां बली ग्रहः समागमेऽन्येन ग्रहेण निर्जितोऽन्येन च दृश्यते तदा प्रव्रज्यां याचमानोऽपि नाप्नोति। पूर्वोक्तं बलिभिः पराजितैः प्रच्युतस्दाऽन्यदृष्टैर्वेति विशेषणम्। वा शब्दश्च शब्दस्यार्थे।।१३।।

पूर्वोक्तप्रव्रज्याकारक ग्रह यदि सूर्य के किरण सान्निध्यवश अस्त हो तो वह जातक परिव्राजक होकर भी अदीक्षित (दीक्षारहित) ही रहता हुआ उसका भक्तबना रहता है। एवं यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह दूसरे बली ग्रहों से पराजित हो अथवा अन्य ग्रहों से दृष्ट हो तो प्रार्थना करते रहने पर भी दीक्षा प्राप्त नहीं कर पाता है।।१३।।

इति प्रव्रज्यायोगनिरूपणम्।

* * *

राशिशीलनिरूपणम्-

चरादि राशिफल-

अस्थिरविभूतिमित्रं चलनमटनं स्खलितनियममपिचरभे।
स्थिरभे तद्विपरीतं क्षमान्वितं दीर्घसूत्रं च।।१।।
द्विशरीरे त्यागयुतं कृतज्ञमुत्साहितं विविधचेष्टम्।।१-२।।

सं० टी०- अथ राशिशीलनिरूपणम्। अस्थिरविभूति अनियतविभूति-अस्थिरमित्रं चञ्चलं कर्मस्ववनस्तिं अटनं परिभ्रमणशीलं स्वखलितनियमं चलितव्रतं एवंविधं चरराशौ स्थिते चन्द्रे जातं भवति। स्थिरभे तद्विपरीतमिति। स्थिरमित्रं अचलं नाटनं नो स्खलितनियमं न केवलमेतत्क्षमान्वितं दीर्घसूत्रं चिरेण कार्यानुष्ठानं एवंविधं स्थिरराशौ चन्द्रे जातं भवति। द्विशरीरे त्यागयुक्तम्। दातारं कृतज्ञं प्रसिद्धं उत्साहितमुत्थानशीलं विविधचेष्टमनेकक्रियकारिणं एवंविधं द्विस्वभाव-राशौ चन्द्रेविद्यात्।।११-२।।

जन्मकालिक चन्द्रमा चर (१।४।७।१०) राशि में हो तो जातक चञ्चल सम्पत्ति और चपल मित्रों वाला स्वयं भी चञ्चलस्वभावी, अनावश्यक भ्रमणशील और की गई प्रतिज्ञा से विमुख हो जाने वाला होता है।

किन्तु स्थिर (२।५।८।११) राशि में ठीक इससे विपरीत (स्थिर सम्पत्ति, अचपल, मित्रों इत्यादि) तथा दयावान् और दीर्घसूत्री समझना।

एवं यदि चन्द्रमा द्विस्वभाव (३।६।९।१२) राशि में हो तो जन्म लेने वाला त्यागी (दानी), किये हुए उपकार को मानने वाला, उत्साही और बहुत कार्यों को सम्पन्न करने वाला होता है।।१-११२।।

ग्राम्यारण्यजलोद्भवराशिषु विद्याच्च तच्छीलान्।।२।।

सं० टी०- ग्राम्यारण्येति। ग्राम्यराशयो मिथुनकन्यातुलाकुम्भाः धन्विपूर्वार्द्धं एतेषामन्यतमस्थे चन्द्रमसि जाता ग्रामशीला भवन्ति,

ग्रामशीला ग्रामप्रिया अरण्यसलिलभीरवः। अरण्या मेषवृषसिंहाः धनुः पश्चिमार्धं मकरपूर्वार्द्धमत्र जाता अरण्यप्रिया भवन्ति ग्रामसलिलभीरवश्च। बलोद्भवाः कर्कमीनमकरान्त्यभागा एतेषामन्यतमस्थे चन्द्रमसि जाता जलप्रिया भवन्ति, ग्राम्यारण्यभीरवश्च वृश्चिकस्थे चन्द्रमसि जाता ग्राम्यारण्यशीला भवन्ति।।२।।

यदि जन्मकाल में चन्द्रमा ग्राम्य (द्विपद=अर्थात् मिथुन, कन्या, तुला, कुम्भ और धनु के पूर्वार्ध) में हो तो जातक भी ग्राम्यप्रिय। अरण्य (चतुष्पद=मेष, वृष, सिंह, धनु के उत्तरार्ध) में हो तो वनों में रहनेवाला। जलचर (कर्क, मीन, मकरोत्तरार्ध) में हो तो जलप्रिय एवं यदि वृश्चिक राशि में चन्द्रमा हो तो जातक ग्राम्य और अरण्य, दोनों में सुखपूर्वक वास करने वाला होता है।।२।।

विशेष- प्रयोजन यह है कि जिन राशियों के जो-जो स्थान कहे गये हैं, जातक उन्हीं स्थानों में रहकर अथवा उन्हीं स्थानों सम्बन्धी व्यवसाय द्वारा सुख को प्राप्त होता है।

दृष्टिफल-

क्षेत्राधिपसन्दृष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान् ।
द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभं नाऽन्यैः ॥३॥

सं० टी०- अथ दृष्टिफलविचारम्। यस्मिन् राशौ स्थितः चन्द्रस्तद्राशीश्वरेण दृष्टश्चन्द्रस्तत्कालजातः पुमान् राजा स्यात्। अथ चन्द्राक्रान्तराशिस्तस्याधिपमित्रेण दृष्टे चन्द्रे संजातो धनवान् भवति। अथदिव क्षेत्राधिपशत्रुणा दृष्टे चन्द्रे दरिद्रो भवति। क्षेत्राधिपमध्यदृष्टि-र्निष्फला भवति। द्रेष्काणांशकपैरिति। यस्मिन्द्रेष्काणे चन्द्रो व्यवस्थितः तस्य द्रेष्काणस्य स्वामिना दृष्टे जातो धनी भवति। अत्रांशकग्रहणे नवांशकेति सर्वांशकग्रहणम्। यस्मिन्नवांशे द्वादशांशे त्रिंशांशे स्थिते चन्द्रे तेषां स्यामिभिश्च दुष्टे जातो धनी भवति। अथदिव द्रेष्काणांशस्वामी शत्रुभिर्दृष्टे चंद्रे निर्धन इति। तन्मध्यदृष्टिर्निष्फलप्राया। सौम्यैरिति।

क्षेत्राधिपो द्रेष्काणांशकपतिश्च यदि शुभग्रहो भवति तदा शुभकृद् भवति। अथाशुभोऽपि शुभकृत् किन्तु प्रायोग्रहणाद् शुभोऽपि फलदा भवति। पापग्रहः किञ्चित्फलदः। यस्माद् बृहज्जातके पापानाम-पि क्षेत्रपानां दृष्टिफलं शुभमुक्तं न केवलं यावदन्येश्वरः स भवति।।३।।

जन्मकाल में चन्द्रमा जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी चन्द्रमा को देखता हो तो जातक राजा होता है। एवं यदि चन्द्रमा पर राशीश्वर के मित्र की दृष्टि हो तो धनवान् होता है। अथवा चन्द्रमा जिस द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश या त्रिंशांश में हो उसका स्वामी यदि शुभ ग्रह हो तो उसकी दृष्टि से भी प्रायः शुभफल और यदि पापग्रह हो तो अल्प शुभफल समझना।।३।।

विशेष- कहने का तात्पर्य यह है कि चन्द्राश्रित राशिपति या उसके मित्र शुभ हो अथवा पाप दोनों की दृष्टि से सर्वथा शुभ ही समझना। परञ्च द्रेष्काण का वा नवांश का स्वामी शुभग्रह हो तो विशेष (राजयोगादि) शुभ फलों को देनेवाला और पापग्रह हो तो अल्प शुभ फल समझना।

भावफल-

पुष्णन्ति शुभा भावान्मूर्त्यादीन् घ्नन्ति संस्थिता पापाः।
सौम्याः षष्ठेऽरिघ्नाः सर्वेऽरिष्टा व्ययाष्टमगाः।।४।।

सं० टी०- भावफलविचारम्। लग्नादरभ्य तन्वादयो भावास्तत्र यस्मिन् भावे शुभग्रहाः व्यवस्थिताः तं भावं पुष्णन्ति वृद्धिं कुर्वन्ति। यस्मिन् भावे पापग्रहाव्यवस्थितास्तद्भावहानिकराः। सौम्याः षष्ठेऽरिघ्नाः सौम्याः षष्ठस्थानस्थाः शत्रुनाशकराः भवन्ति पापा अवश्यमेवेति सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगाः पापाः सौम्याश्च मृत्कवृद्धिं कुर्वन्ति षष्ठग्रहण-मत्रोपचयस्थानोपलक्षणार्थं तेन तृतीयस्थाः सौम्याः पापाश्च सहजवृद्धिं कुर्वन्ति, दशमस्थाः सौम्याः पापाश्च कर्मवृद्धिं कुर्वन्ति, एकादशस्था सौम्याः पापाश्चायवृद्धिं कुर्वन्ति। यदुक्तं *'उपचयवर्ज्यं सौम्यैर्यत्तत्पापै-र्विपर्यस्तम्'*।।४।।

लग्नादि द्वादश भावों में जिस-जिस भाव में शुभग्रह हो उस-उस भाव की वृद्धि और पापग्रह से हानि समझना। परञ्च षष्ठ भावस्थ शुभग्रह को रिपु (शत्रुओं) का नाशकारक ही जानना एवं द्वादश तथा अष्टमभावस्थ शुभ और पाप, दोनों को ही अनिष्टप्रद समझना।।४।।

लग्नगत चन्द्रफल-

कर्कवृषाजोपगते चन्द्रे लग्ने धनी सुरूपश्च।
विकलाङ्गजडदरिद्राः शेषेषु विशेषतः कृष्णे।।५।।

सं० टी०- चन्द्रमसो लग्नगतस्य फलमाह-कर्कराशौ लग्नगते वृषे मेषे च लग्नगते तत्स्थे चन्द्रे जातो धनी सुरूपश्च कर्कवृषमेषान् वर्जयित्वा शेषराशौ लग्नगते चन्द्रे कृष्णपक्षे विशेषतो अत्यर्थं विकलाङ्गजडदरिद्राणां जन्म भवति।।५।।

जन्मकाल में कर्क, वृष या मेष लग्न हो और उसमें चन्द्रमा बैठा हो तो जातक धनवान् और रूपवान् होता है और भिन्न राशिगत चन्द्रमा यदि लग्न में हो तो जातक को विकलाङ्ग (अङ्गहीन), मूर्ख और दरिद्र समझना, ऐसे योग में यदि कृष्णपक्ष भी हो तो विशेषकर ऐसा फल होता है।।५।।

विशेष- इससे सिद्ध होता है कि शुक्लपक्ष में कर्क, वृष या मेषगत चन्द्रमा लग्न में हो तो जातक को विशेष धनाढ्य और रूपवान बनाता है।

सूर्यफल-

विकलेक्षणोऽर्कलग्ने तैमिरिकोऽजे स्वभे तु रात्र्यन्धः।
बुद्बुददृष्टिः कर्किणि कामो व्ययगे शशाङ्के वा।।५।।

सं० टी०- अर्कस्य लग्नगतस्य चन्द्रार्कयोश्च लग्नाद् द्वादशस्थान-योविशेषमाह। मेषसिंहकर्कटान् वर्जयित्वाऽन्यस्मिन् राशौ लग्नगते तस्मिन् चार्के स्थिते विकलेक्षणो भवति। मेषराशौ लग्नगते तत्रैव चार्के स्थिते जातस्तैमिरिको भवति। तिमिराहतदृष्टः सिंहे लग्नगते तत्र चैवार्के

स्थिते जातो रात्र्यन्धो भवति। कर्किणिलग्नगते तत्रैव चार्के स्थिते जातो बुद्बुददृष्टिर्भवति पुष्पिताक्षः। काणो व्ययगे शशांके वा। लग्नगते द्वादशेऽर्के जातः काणो भवति चन्द्रे वा द्वादशे काणः। यद्यपि सामान्येनोक्तं तथापि आदित्ये व्ययगते दक्षिणाक्षिणाकः चन्द्रे व्ययगते वामाक्षिकाणः। उक्तं च *'व्ययगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रविः इति'*। ६।

जिसके जन्मकालिक लग्न में सूर्य हो वह क्षीण दृष्टि वाला होता है। विशेष यह है कि यदि सूर्य मेष में स्थित होकर लग्न में हो तो जातक तैमिरिक (मोतियाबिन्द आदि) रोग युक्त नेत्रवाला, सिंह में हो तो रतौंधी वाला और यदि कर्क में हो तो फूली रोगयुक्त नेत्रवाला होता है। एवं यदि द्वादश भाव में सूर्य या चन्द्रमा बैठा हो तो जातक को काना समझना चाहिये।।६।।

विशेष- यहाँ यदि सूर्य १२ वे हों तो जातक को दक्षिण नेत्र से और चन्द्रमा १२वें हो तो वाम नेत्र से रहित कहना।

भावफल में न्यूनाधिकता-

इष्टं पादविवृद्ध्या मित्रस्वगृहत्रिकोणतुङ्गेषु।
रिपुभेऽल्पं फलमर्कोपगतस्य पापं शुभं नैव।।७।।

सं० टी०- भावफलम्। तद्द्विविधं शुभमशुभं च। तत्र यद्भावफलं शुभं तस्य फलस्य मित्रक्षेत्रस्थो ग्रहः पादं चतुर्थांश प्रयच्छति। स्वगृहस्थोर्धम्। त्रिकोणस्थः पादहीनम्। तुङ्गो उच्चस्थः सर्वम्। रिपुभेल्पमिति-रिपुक्षेत्रस्थः पादादप्यल्पम्। अर्कोपगताऽस्तङ्गतो न किञ्चिदपि नीचस्थश्च। एवं शुभफलं प्रयच्छन्ति। पापफलमेवं तत्र पापस्य फलस्य शुभफलेन व्याक्षपः तत्रास्तमितो नीचस्थश्चाशुभं सम्पूर्णं ददाति, शत्रुक्षेत्रस्थः पादोनं मित्रक्षेत्रस्थोद्र्धं स्वगृहस्थः पादं त्रिकोणस्थः पादादल्पं उच्चस्थानस्थो न किञ्चिदपि।।७।।

जो ग्रह अपने मित्र, अपने गृह, अपने मूल-त्रिकोण और अपने उच्च में हो तो उसका शुभ भावफल क्रमशः १,२,३ और चारों (४)

चरण से (सम्पूर्ण) शुभ होता है। एवं शत्रुराशिगत हो तो एक चरण से भी अल्प और जो ग्रह सूर्य सान्निध्य से अस्त हो तो उसका शुभभावफल कुछ भी नहीं होता है तथा पापफल पूर्ण होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि भावज अशुभफल इससे उल्टा समझना। अर्थात् नीचगत और अस्तादि ग्रह पापफल पूर्ण, शत्रुराशिगत हो तो ३ चरण, अपने मित्र की राशि में हो तो २ चरण, अपनी राशि में १ चरण, अपने मूल-त्रिकोण में १ चरण से भी अल्प और अपने उच्च में पड़ा हुआ ग्रहशून्य अशुभ फल देता है।।७।।

इति राशिशीलनिरूपणम्-

आश्रययोगनिरूपणम्-

मेषादि नवांशजातफल-

तस्करभोक्तृविचक्षणधनिनृपतिनपुन्सकाऽभयदरिद्राः।
खलपापोग्रोत्कृष्टा मेषादीनां नवांशभवाः।।१।।

सं० टी०- अथाश्रयनिरूपणं चाह। तत्रादावेव नवांशजातस्य स्वरूपमाह। यस्मिन् कस्मिन् राशौ लग्नगते मेषनवांशे जातस्तस्करो भवति। वृषनवांशके जातो भोक्ता, मिथुननवांशके जातो विचक्षणः, कर्कनवांशके जातो धनी, सिंहनवांशे जातो राजा, कन्यानवांशके जातो नपुंसकः, तुलानवांशके जातः शूरः, वृश्चिकनवांशे जातो दरिद्रो भवति। धन्विनवांशे जातः खलो दुष्टो भवति। मकरनवांशे जातः पापो भवति। कुम्भनवांशके उग्रो भवति। क्रूर इत्यर्थः। मीननवांशे जातः उत्कृष्टो भवति।१।

जिस किसी भी लग्न में मेष का नवांश हो तो जातक चोर, वृष का हो तो भोगी, मिथुन का हो तो पण्डित, कर्क से धनवान्, सिंह से राजा, कन्या से नपुंसक, तुला से निर्भय, वृश्चिक से दरिद्र, धनु से दुष्ट, मकर से पापी, कुम्भ से क्रूर (हिंसक) और मीन का नवांश हो तो जातक को अतिश्रेष्ठ (नृपतुल्य) समझना।।१।।

विशेष- उक्त मेषादि नवांशजात फल जो कहे गये हैं, वे वर्गोत्तम से भिन्न में समझना। अर्थात् यदि वर्गोत्तम नवांश हो तो जातक इन सबों का अधिपति होता है। यथा बृहज्जातक में कहा भी है-

'वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशा' इससे सिद्ध होता है कि यदि मेषलग्न में मेष का ही नवांश हो तो चोरों का राजा, वृष में वृष का ही नवांश हो तो भोगियों में श्रेष्ठ इत्यादि।

स्वगृह-मित्रगृहगत ग्रहों के फल-

कुलतुल्यकुलाधिकबन्धुमान्यधनिभोगिनृपसमनरेन्द्राः ।
स्वर्क्षगतैकविवृद्ध्या किञ्चिन्न्यूनाः सुहृद्गृहगैः ।।२।।

सं० टी०- एकविवृद्ध्या स्वक्षेत्रगतैर्ग्रहैर्जातस्य स्वरूपमाह। यस्मिन् कस्मिन् राशौ ग्रहे स्वक्षेत्रे जातः स्वकुलसदृशो भवति। द्वयोः स्वक्षेत्रयोः स्वकुलाधिकः, त्रिषु बन्धुमान्यः, चतुर्षु धनी, पञ्चसु भोगी, षट्सु नृपसमः, सप्तसु राजा। किंचिन्न्यूनः सुहृद्गृहगैः एकस्मिन् भावे मित्रक्षेत्रगते ग्रहे परविभवोपजीवी, द्वयोः सुहृद्-विभवोपजीवी, त्रिषु जातिविभवाप-जीवी चतुर्षु बन्धुषु विभवोपजीवी, पंचसु गणस्वामी, षट्सु बलस्वामी सप्तसु राजा। उक्तं च *'परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्यागणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु'* इति।।२।।

जन्म समय में यदि एक ग्रह स्वगृही हो तो जातक कुल (पितामह-पिता) के समान, २ ग्रह स्वगृही हों तो कुल में मुख्य, ३ से बन्धुओं में पूज्य, ४ से धनी, ५ से अत्यन्त सुख भोगी, ६ से नृपतुल्य और यदि सातों ग्रह स्वगृही हो तो जातक नरेन्द्र (राजा) होता है। इसी तरह का कुछ न्यून फल यदि एकादि ग्रह मित्रराशिगत हों तो समझना।। २।।

विशेष- एक ग्रह मित्र राशि में हो तो दूसरे के धन से पोषित, २ से मित्रोपजीवी, ३ से स्वजाति द्वारा, ४से बन्धुओं के द्वारा पालित, ५ से बहुतों का नायक, ६ से सेनापति और यदि सातों ग्रह मित्रराशिगत हों तो जातक राजा होता है। यथा-बृहज्जातक में कहा भी है कि-

'परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु।'

स्वोच्चगत ग्रहों के फल-

त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः।

पञ्चादिभिरन्यकुलोद्भवाश्च तद्वत्त्रिकोणगतैः।।३।।

सं० टी०- यस्य जन्मनि त्रयो ग्रहाः उच्चगता भवन्ति स राजवंशजातस्तदा राजा भवति। यस्य चत्वारः सोऽपि राजवंशजो राजा भवति। यस्य जन्मनि पञ्च ग्रहाः उच्चराशिगता भवन्ति स यदि अन्यकुलजातस्तदाऽपि राजा भवति। यस्य षट्ग्रहाः स अन्यकुलजातो राजा भवति। यस्य सप्त ग्रहाः सोऽपि। एकेनोच्चगतेन द्वाभ्यां च राजवंशजो राजा न भवति किं तर्हि धनी भवति। तत्रापि यथा यथोच्चस्था ग्रहाः भवन्ति तथा तथाधिको धनी तद्वत्त्रिकोणगतैरपि त्रिचतुर्भिर्मूलं त्रिकोणगतै राजवंशजो राजा भवति। पञ्चषष्ठसप्तभिर्मूलत्रिकोणगतैरन्यवंशजोऽपि राजा भवति। अल्पैर्मूलत्रिकोणगैर्धनी भवति। यथा यथा बहव मूलत्रिकोणस्था भवन्ति तथा तथाऽधिका धनी भवति।।३।।

३ या ४ ग्रह यदि उच्च में हों तो राजकुल में जन्म लेने वाला राजा होता है। एवं यदि ५ से अधिक ग्रह उच्च में पड़े हों तो अन्य कुल के बालक भी राजा हो जाते हैं। इसी तरह का फल त्रिकोण (अपने मूल त्रिकोण) गत ग्रहों से भी समझना।।३।।

विशेष- अभिप्राय यह है कि ३ या ४ ग्रह के उच्च में होने से अन्य कुल के बालक राजा न होकर अत्यन्त धनिक होते हैं। इसी प्रकार त्रिकोण से भी समझना।

नीचगत ग्रहों के फल-

निर्धनदुःखितमूढव्याधितबन्धाभितप्तवधभाजः　।

एकोत्तरपरिवृद्धया नीचगतैः　शत्रुगृहगैर्वा ।।४।।

सं० टी०- अथैकादिभिर्नीचगतैर्गृहैर्जातस्य स्वरूपमाह। यस्मिन् कस्मिन् राशौ एकस्मिन् ग्रहे नीचगते शत्रुक्षेत्रगते वा जातो निर्धनो

भवति द्वाभ्यां नीचगताभ्यां दुःखितं, त्रिभिर्मूढो विचेताः चतुर्भिर्व्याधितः, पञ्चभिर्बन्ध्यः षड्भिरभितप्तवाक् सप्तभिर्वधभाग्भवति।।४।।

जन्मकाल में यदि १ ग्रह नीच या शत्रुराशि में हो तो जातक धनहीन, २ ग्रह हों तो दुःखित, ३ ग्रह से मूर्ख, ४ से व्याधिग्रस्त, ५ में बन्धन से दुःखी, ६ से अभितप्त (ताप से पीड़ित) एवं यदि सातों ग्रह शत्रुगृह में हो तो वधभागी होता है।।४।।

विशेष- सातों ग्रह एक समय में अपने नीच में नहीं हो सकते, किन्तु शत्रुराशि में रह सकते हैं। इस अभिप्राय से बृहज्जातक में वराहमिहिर कहे भी है- 'वधदुरितसमेतः'। अर्थात् ६ और ७ ग्रह का फल समान ही समझना।

राजयोग-

एकोऽपि नृपतिजन्मप्रदो ग्रहः स्वोच्चगः सुहृद्दृष्टः।
बलिभिः केन्द्रोपगतैस्त्रिप्रभृतिविरनिपालभवः।।५।।

सं० टी०- अथ राजयोगं चाह। यस्य जन्मनि एकोऽपि ग्रहः स्वोच्चगः मित्रेण तत्काले दृष्टः नृपजन्मदो भवति। त्रयो ग्रहा बलयुताः केन्द्रगता भवन्ति स जातो राजा भवति। तत्र चत्वारश्च स राजा भवति। पञ्चादयो न गृहीतव्या यस्मात्पञ्चादिभिः केन्द्रगतैरबलवद्भिर्जातो राजा भवति। तत्रैव तज्जातं त्रिभिश्चतुभिर्वा स्वोच्चगतैर्न केवलं केन्द्रगतैर्बलवद्भी राजवंशे जातो राजा भवति।।५।।

स्वोच्चगत एक भी ग्रह यदि अपने मित्र से दृष्ट हो तो बालक राजा होता है तथा ३ या ४ बली ग्रह केन्द्र स्थान में हो और बालक राजकुल का हो तो भी राजा कहना।।५।।

विशेष- कहने का तात्पर्य यह है कि ५ से अधिक ग्रह बली होकर केन्द्र में हो तो अन्य कुल का बालक भी राजा होता है। एवं यदि ५ से अधिक निर्बल ग्रह का केन्द्र में रहना भी राजकुल में जन्म लेनेवाले के लिये राजा बनने का सूचक है।

वर्गोत्तमगे चन्द्रे चतुराद्यैर्वीक्षिते विलग्ने वा ।
नृपजन्म भवति राज्यं नृपयोगे बलयुतदशायाम् ।।६।।

सं० टी०- राजयोगान्तरमाह। यस्मिन् राशौ चन्द्रो व्यवस्थितः स चन्द्रो राशिसम्बन्धिनवांशके भवति तदा वर्गोत्तमस्थो भवति। यस्मिन् वर्गोत्तमगते चन्द्रे चतुराद्यैर्ग्रहैश्चतुः पञ्चषड्भिर्वीक्षिते तदा जातोऽन्य-कुलजोऽपि राजा भवति। विलग्ने वा यस्य लग्नस्योदयस्तस्य चेत्स्वनवांशकोदयो भवति। तदा सलग्नो वर्गोत्तमस्थो भवति तस्मिन् लग्ने वर्गोत्तमगते चतुराद्यैर्ग्रहै; चन्द्रवर्तिजश्चतुः पंचषड्भिर्वीक्षितैर्यो जातः सोऽपि राजा भवति। तदुक्त' वर्गोत्तमगतं चन्द्रे अथवा चन्द्रवर्जितः। चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपवंशोद्भवः स्मृतः' इति राज्यं नृपयोगे बलयुततद्दृशायामिति। विद्यमाने राजयोगे बलयुतग्रहस्य दशायां तस्य राज्यप्राप्तिर्वक्तव्याः।।६।।

चन्द्रमा या लग्न यदि वर्गोत्तम नवांश में हो और चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ४, ५ अथवा ६ ग्रहों से दृष्ट हो तो बालक राजा होता है एवं योगकारक ग्रहों में बली ग्रह की दशान्तर्दशा में राज्य की प्राप्ति होती है।।६।।

विषय कथन-

उडुपतियोगसमागममशीलसंदर्शनानि भावाश्च ।
आश्रयराज्यप्रभवाश्चाध्यायेऽस्मिन् क्रमेणोक्ताः ।।७।।

सं० टी०- अथ प्रकीर्णकाध्यायोक्तप्रकरणसंग्रहमाह इति। लघुजातकप्रकीर्णाध्याये (१) अनफासुनफादुरुधराकेमद्रुमाख्या राशि-योगाः। (२) द्विग्रहादि योगाः प्रव्रज्यायोगाश्च समागमाः। (३) अस्थिर-विभूतिमित्राद्यानि राशिशीलानि। (४) क्षेत्राधिपसंदृष्ट इत्येवमाद्यानि संदर्शनानि। (५) पुष्णन्ति शुभा भावानित्येवमाद्या भावाः। (६) अंशकस्वरूपकुलतुल्याद्याश्च योगाः। (७) 'एकोपि नृपति-जन्मप्रद' इत्याद्या राजयोगाः। एतस्मिन्प्रकीर्णाध्याये क्रमेणोक्ताः।। २७।।

इस प्रकीर्णाध्याय में चन्द्रयोग-समागम-राशिशील-दृष्टि-भाव-आश्रय और राजयोग, ये सात प्रकरण क्रम से कहे गये हैं। ।७। ।

इति लघुजातके प्रकीर्णाध्यायः । ।१२। ।

अथ नाभसयोगाध्यायः ।।१३।।

रज्जु-मुसल और नलनामक (आश्रययोग)-

चरभवनादिषु सर्वैराश्रयजा रज्जुमुसलनलयोगाः ।
ईर्ष्युर्मानी धनवान् क्रमेण कुलविश्रुताः सर्वे । ।१। ।

सं० टी० - अथ नाभसयोगाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्र नाभसयोगाश्चतुर्धा आश्रययोगो दलयोगौ आकृतियोगाः सांख्ययोगाश्च। तत्र आश्रययोगास्त्रयः, दलयोगौ द्वौ, आकृतियोगा विंशतिसंख्याः, संख्यायोगाः सप्त एवं द्वात्रिंशन्नाभसयोगाः। तत्राश्रययोगत्रयं तत्फलमाह। यदा सर्वे ग्रहाश्चरराशिगता भवन्ति, न केचित्, स्थिरराशिषु द्विस्वभावेषु च भवन्ति तदा रज्जुनाम योगो भवति। यदा सर्वे ग्रहाः स्थिरराशिषु भवन्ति न कश्चिच्चरराशौ द्विस्वभावराशौ वा भवन्ति तदा मुशलनामयोगो भवति। यदा सर्वे ग्रहाः द्विस्वभावराशिषु भवन्ति न कश्चिच्चरराशौ न च स्थिरराशौ भवन्ति तदानलयोगः एषां फलान्याह। रज्जुयोगे जात ईर्ष्युः परममत्सरी भवति। मुशले जातो मानो गर्वितो भवति। अनलाख्ये योगे जातो धनवान् भवति। क्रमेणैतानि फलानि कुलविश्रुताः। सर्वे आश्रययोगैः सर्वैर्जाताः कुलविश्रुताः कुलख्याताः। इत्याश्रययोगाः।।१।।

सब ग्रह चरराशि में हों तो रज्जुयोग, सब स्थिर में हो तो मुसलयोग तथा यदि सब द्विस्वभावराशि में हो तो नलयोग होता है। रज्जुयोग में उत्पन्न बालक ईर्ष्यावान्, मुसल में अभिमानी और नलयोग में धनवान् होता है। विशेषता यह है कि इन तीनों ही योग में उत्पन्न मनुष्य अपने-अपने कुल में प्रसिद्ध होते हैं। ।१। ।

सर्प और मालानामक (दलयोग) -

केन्द्रत्रयगैः पापैः शुभैर्दलाख्यावहिश्चमाला च।
सर्पेऽतिदुःखितानां मालायां जन्म सुखिनां च।।२।।

सं० टी०- अथ दलयोगौ तयोर्जातस्य स्वरूपमाह। एषु केषु त्रिषु केन्द्रेषु च यदा त्रयः पापग्रहा अर्कारसौरा भवन्ति न चैकस्मिन्नपि केन्द्रे सौम्यग्रहो भवति तदा सर्पो नाम दलयोगः। यदा येषु केन्द्रेषु सौम्यग्रहा बुधगुरुशुक्रा भवन्ति च कश्चित् केंद्रे पापग्रहो भवति तदा मालानाम योगो भवति। तत्र योगद्वये चन्द्रमा न ग्राह्यः। फलमाह सर्पेति। सर्पेयोगे दुःखितानां जन्म भवति। मालायोगे सुखिनां जन्म भवति। इति दलयोगौ।।२।।

किसी भी २ केन्द्र में तीनों पापग्रह (सूर्य, मङ्गल, शनि) हों और कोई शुभग्रह केन्द्र स्थान में न हो तो सर्प नामक योग होता है। तथा ३ केन्द्र में तीनों शुभग्रह (बुध, बृहस्पति, शुक्र) हों और कोई पापग्रह केन्द्र स्थान में न हो तो माला नामक योग होता है। ये दानों योग दलयोग कहलाते हैं। मालायोग में भोगी और सर्पयोग में उत्पन्न जातक दुःखभागी होता है।।२।।

विशेष- यहाँ केन्द्र स्थान में केवल शुभ या केवल पापग्रह से ही दलयोग समझना। यथा बादरायण-

'केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम्।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमाऽरसूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितो दलाख्यौ।।'

एवं दल योग में चन्द्रमा को शुभ और अशुभ, दोनों से भिन्न समझकर छोड़ दिया गया है। कारण यह है कि चन्द्रमा में स्वाभाविक शुभत्व सर्वदा नहीं रहता, कभी क्षीणरश्मि रहने पर पापत्व को भी प्राप्त हो जाता है। तथा बुध शुभग्रह होते हुए भी पापसाहचर्य से पापी बन जाता है।

गदा आदि हलपर्यन्त ५ योग और फल-

द्विरनन्तरकेन्द्रस्थैर्गदाविलग्नास्तसंस्थितैःशकटम् ।
खचतुर्थयोर्विहङ्गः श्रृङ्गाटकमुदयसुतनवगैः ।।३।।
श्रृङ्गाटकतोऽन्यगतैर्हलमेतेषां क्रमात्फलोपनयः ।
यज्वा शकटाजीवी दूतश्चिरसौख्यभाक्कृषिकृत् ।।४।।

सं० टी०- अथाकृतियोगाः। तत्र गदाशकटविहंगश्रृङ्गाटकानां लक्षणं तत्फलोपनयं चाह। द्विरनन्तरेतिद्वयोः केन्द्रयो यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा गदायोगो भवति च चतुर्धा। लग्नचतुर्थस्थैरेकः, चतुर्थसप्तम-स्थैर्द्वितीयः, सप्तमदशामस्थैस्तृतीयः,दशमलग्नस्थैश्चतुर्थः। विलग्नास्तसंस्थितैः शकटमिति। लग्ने सप्तमे च स्थाने यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा शकटा-ख्ययोगः। खचतुर्थयोर्विहगः, दशमचतुर्थयोर्यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा विहङ्गयोगः। श्रृङ्गाटकमिति। लग्ने पञ्चमे नवमे च यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा श्रृङ्गाटको योगः। श्रृंगाटकमिति। लग्नं वर्जयित्वा यदान्यत्र स्थानत्रये परस्परं त्रिकोणगता ग्रहा भवन्ति तदा हलाख्ययोगः। स च त्रिधा। द्वितीय षष्टदशमस्थैरेकः, तृतीयसप्तमैकादशस्थैर्द्वितीयः, चतुर्थाष्टमद्वादश-गैस्तृतीयः। अथास्य योगपञ्चकस्य क्रमात्फलोपनयः। गदायोगे जातो यज्वा भवति। शकटयोगे शकटाजीवी, विहङ्गयोगे दूतः, श्रृङ्गाटके चिरसौख्यभाक्, हलाख्ये कृषिकत्।।३-४।।

समीपस्थ दो-दो केन्द्र (अर्थात् लग्न + चतुर्थ, चतुर्थ + सप्तम, सप्तम + दशम, दशम + लग्न) में सब ग्रह पड़े हों तो गदायोग, और सप्तम में सब ग्रह हों तो शकट, चतुर्थ और दशम में सब ग्रह हों तो विहग, लग्न पञ्चम नवम इन तीनों में सब ग्रह हों तो श्रृङ्गाटक एवं इनसे भिन्न (द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ) स्थान से त्रिकोण स्थान (अर्थात् द्वितीय-षष्ठ-दशम में वा तृतीय-सप्तम

एकादश में अथवा चतुर्थ-अष्टम-द्वादश) में सब ग्रह हों तो हल नामक योग होता है। गदायोग में उत्पन्न बालक विधि-पूर्वक यज्ञ करने वाला, शकटयोग में गाड़ी से आजीविका करने वाला, विहगयोग में दूतकार्य करनेवाला, शृङ्गाटकयोग में बहुत दिनों तक सुख भोगने वाला, हलयोग में जन्म लेने वाला कृषि (खेती अथवा जमीन आदि) कार्य करनेवाला होता है।।३-४।।

वज्र आदि दण्डपर्यन्त ८ योग-

क्रूरैः सुखकर्मस्थैः सौम्यैरुदयास्तसंस्थितैर्वज्रम् ।
यव इति तद्विपरीतैर्मिश्रै कमलं च्युतैर्वाऽपि ।।५।।
लग्नादिकण्टकेभ्यश्चतुर्गृहावस्थितैर्ग्रहैर्योगाः ।
यूपेषुशक्तिदण्डा वज्रादीनां फलान्यस्मात् ।।६।।

सं० टी०-अथ -वज्रयवकमलवापीयूपशरशक्तिदण्डयोगानां लक्षणं फलानि चाह। क्रूरैरिति। चतुर्थदशमस्थैः सर्वैः पापग्रहैः लग्नसप्तमस्थैश्च सौम्यग्रहैर्वज्रयोगाः। वज्रविपरितस्थैर्यवः। एतदुक्तम्। चतुर्थदशमयोर्यदा सर्वेसौम्याग्रहा भवन्ति लग्नसप्तमगाश्च पापा भवन्ति तदा यवाख्यो योगः। मिश्रैः कमलमिति। वज्रयोगोक्तस्थानं बिना सर्वे एव ग्रहाः यदा चतुर्षु केन्द्रेषु भवन्ति तदा कमलयोगः। च्युतैर्वापीति। एवं केन्द्रच्युतैः सर्वैरेव ग्रहैर्वापीयोगः। स च द्विधा। द्वितीयपंचाष्टमैकादशमस्थाः सर्वे भवन्ति तदैकः। यदि तृतीयषष्ठनवमद्वादशस्थाः सर्वे ग्रहास्तदा द्वितीयः। लग्नादिकेन्द्रमादितः कृत्वा चतुर्गृहेषु यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा यूपेषु-शक्तिदंडाख्ययोगा भवन्ति। तद्यथा-लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थस्थैः सर्वग्रहैर्यूपाख्यो योगः। चतुर्थपंचमषष्ठसप्तमस्थैरिषुः, सप्तमाष्टमनवमदशमस्थैः शक्तिः, दशमैकादशद्वादशलग्नस्थैर्दण्डः इति।।५-६।।

सभी पापग्रह चतुर्थ-दशम में अथवा सभी शुभग्रह लग्न-सप्तम में स्थित हों तो वज्रयोग होता है। इससे विपरीत (उल्टा) अर्थात् सब

शुभग्रह चतुर्थ दशम में अथवा सब पापग्रह लग्न-सप्तम में हो तो यवन नामक तथा इन (चारों केन्द्र स्थानों) में यदि मिश्रित समस्त (शुभ-पाप) ग्रह पड़े हों तो कमल नामक एवं मिश्रित सब ग्रह यदि केन्द्र से भिन्न स्थान में (अर्थात् सब पणफर में हों या आपोक्लिम में हों) हों तो दोनों प्रकार से ही वापी नामक योग होता है।

लग्न से प्रारम्भ कर चतुर्थ पर्यन्त चारों स्थान (लग्न, २, ३, ४) में सब ग्रह हों तो यूप। इसी प्रकार चतुर्थ से सप्तम पर्यन्त में रहने से शर, सप्तम से दशम पर्यन्त में रहने से शक्तिऔर दशम से लग्न पर्यन्त चारों स्थान में सब ग्रहों के रहने से दण्ड नामक योग होता है। ५-६।

विशेष- ज्ञातव्य यह है कि वज्रयोग में यहाँ आचार्य प्रवर वराहमिहिर ने सहसा 'लग्न-सप्तम सब शुभ और चतुर्थ-दशम में सब पाप एक साथ ही हों तो वज्रयोग होंगा। इस प्रकार अर्थ कल्पना करके प्राचीनाचार्यो पर वृहज्जातक में यथा-

'पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः।
चतुर्थे भवने सूर्याज्ज्ञिसतौ भवतः कथम् ।।'

इस प्रकार का जो आक्षेप किया है, वह अर्थ असम्भव होने के कारण असङ्गत है।

उक्त ८ योगों के फल-

आद्यन्तयोः सुखयुतः सुखभाङ्मध्ये धनान्वितोऽल्पसुखः।
त्यागी हिंस्रो धनवर्जितः पुमान् प्रियैर्वियुक्तश्च।।७।।

सं० टी०- वज्रादीनां योगानां फलानि वक्ष्यमाणानि बाल्ये सुखी यौवने दुःखितो वार्धके पुनः सुखी एवंविधो वज्रयोगे जातो भवति। बाल्ये वार्धक्ये च दुःखितः यौवने सुखी एवंविधो यवाख्ये योगे जातो भवति। धनान्वितः कमलाख्ये योगे जातो भवति। वापी संज्ञके अल्पसुखी भवति। यूपाख्ये जातस्त्यागी भवति। इषुयोगे जातो हिंस्रो धातुको

भवति। शक्तियोगे जातो धनवर्जितो भवति। दण्डाख्ये योगे जातः प्रियैः पुत्रादिभिर्वियुक्तो भवति।।७।।

वज्रयोग में उत्पन्न मनुष्य बाल्य और वृद्धावस्था में सुखी अर्थात् युवावस्था में दुःखी होता है। यवयोग में जातक युवावस्था में सुखी अर्थात् बाल्य और वृद्धावस्था में दुःखी, कमलयोग में धनी, वापीयोग में अल्प सुखी, यूपयोग में त्यागी (दाता), इषु (बाण) योग में हिंसक, शक्तियोग में दरिद्र और दण्ड योग में उत्पन्न जातक स्त्री-पुत्रादि बन्धुजनों से रहित होता है।।७।।

नौका आदि समुद्रपर्यन्त ७ योग-

तद्वत् सप्तमसंस्थैर्नौकूटच्छत्रकार्मुकाणि स्युः।
नावाद्यैरप्येवं कण्टकान्यस्थैः स्मृतोऽर्धशशी।।८।।
एकान्तरैर्विलग्नात्षडभवनावस्थितैर्ग्रहैश्चक्रम्।
अर्थाच्च तद्वदुदधिर्नौप्रभृतिफलान्यथो क्रमशः।।९।।

सं० टी०- अथ नौकूटच्छत्रकार्मुकार्धचन्द्राणां लक्षणमाह। तद्वत्सप्तर्क्षस्थैरित्यादि। एकस्मात्केन्द्रादारभ्य सप्तभिर्ग्रहैः सप्तमर्क्षस्थैश्च चत्वारो नौकूटच्छत्रकार्मुकाख्या योगा भवन्ति। लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थ-पञ्चमषष्ठसप्तमगैः सर्वग्रहैर्नौकाख्यः। चतुर्थादिदशमान्तस्थैर्कूटाख्यः। सप्तमादिलग्नान्तस्थैश्छत्राख्यः। दशमादिचतुर्थान्तस्थैश्चापाख्यः। नावाद्यै-र्योगैः कण्टकान्यसंस्थैर्यदा पणफरापोक्लिमादिषु वा सप्तभिर्निरन्तरं-गतैरर्धचन्द्राख्यो योगो भवति। स चाऽष्टधा तद्यथा द्वितीयाद्यष्टमांतेष्वे-कस्तृतीयादिनवमांतेषु द्वितीयः। पंचमाद्येकादशांतेषु तृतीयः। षष्ठादि-द्वादशांतेषु चतुर्थः। अष्टमादिद्वितीयांतेषु पंचमः। नवमादितृतीयान्तेषु षष्ठः। एकादशादिपंचमांतेषु सप्तमः। द्वादशादिषष्ठांतेषु अष्टमः। अथ चक्रसमुद्रयोगयोर्लक्षणमाह। लग्नादारभ्यैकांतरावस्थितैर्ग्रहैः षट्सु चक्राख्यो योगो भवति। तद्यथा-लग्नतृतीयपंचमसप्तमनवमैकादशेषु षट्सु यदा

सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा चक्राख्यो योगः अर्थात् द्वितीयादारभ्यैकांतरावस्थितैः सप्तभिर्ग्रहैः षट्सु उदधिर्नाम योगो भवति। तद्यथा-द्वितीयचतुर्थषडष्ट दशमद्वादशेषु षट्सु ग्रहेषु यदा सप्त ग्रहा भवन्ति तदा उदधियोगो भवति।।८-९।।

लग्न से सप्तम पर्यन्त सातों भावों से सब (निरन्तर सातों) ग्रह हों तो नौकायोग, इसी प्रकार चतुर्थादि सात गृह में सब ग्रह हों तो कूट, सप्तमादि सात गृह में हो तो छत्र एवं दशमादि सात स्थान में सब ग्रह लगातार हों तो कार्मुक (धनुष) योग होता है। एवं किसी भी पणफर या आपोक्लिम से प्रारम्भकर लगातार सात स्थान में एक-एक करके सातों ग्रह पड़े हों तो उसे अर्धचन्द्र नामक योग कहते हैं। **तथा लग्न** से प्रारम्भ कर एकान्तर (एक-एक स्थान छोड़कर अर्थात् १।३।५।७। ९।११) इन ६ विषम स्थानों में ही यदि सब ग्रह हों तो चक्र नामक योग और द्वितीयादि से प्रारम्भ कर ६।८।२।४।६।८।१०।१२ सम स्थानों में सब ग्रह हों तो समुद्र नामक योग होता है। इन (नौकादि) सातों योग का फल क्रम से आगे जानना।।८-९।।

उक्त ७ योगों के फल-

कीर्त्यायुक्तेऽनृतवाक् स्वजनहितः शूरसुभगधीनिभूपाः।
इत्याकृतिजा योगा विंशतिरात्मगुणैस्तेषु नन्दन्ते।।१०।।

सं० टी०- नौप्रभृतीनां सप्तानां फलान्याह। नौयोगे जातः कीर्त्या युक्तो भवति। कूटयोगे जातोऽनृतवाक्। असत्यभाषी भवति। छत्रयोगे जातः स्वजनहितो भवति। कार्मुकयोगे जातः शूरो भवति। अर्धचन्द्रे जातः सुभगो भवति। चक्रयोगे जातो धनी भवति। समुद्रयोगे जातो राजा भवति। आकृतियोगोपसंहारार्थमाह। आकृतियोगा विंशतिः प्रोक्ताः। एवामन्यतमेन जाता आत्मगुणैर्नन्दते स्वबाहूर्ज़िताश्रियो भवंतीत्यर्थः।१०।

नौकायोग में उत्पन्न मनुष्य कीर्तियुक्त, कूटयोग में मिथ्याभाषी, छत्रयोग में आत्मीयजनों का पोषक, कार्मुक योग में शूरवीर,

अर्धचन्द्रयोग में सुन्दर स्वरूप वाला, चक्रयोग में धनी, समुद्रयोग में उत्पन्न बालक राजा होता है। ये (गदा आदि) २० आकृति योग हैं। इनमें किसी भी योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य अपने-अपने योगों के गुणों से युक्तहो आनन्द भोग करते हैं।।१०।।

गोल आदि ७ संख्यायोग –

एकादिगृहोपगतरुक्तान् योगान्विहाय संख्याने।
गोल्त-युग-शूल-केदार-पाश-दामाख्य-वीणाः स्युः ।।११।।

सं० टी०-अथ सप्तसांख्ययोगानाह। एकादिगृहोपगतैरित्यादि। उक्तयोगान् रज्जुमुशलादिसमुद्रांतान्योगान् वर्जयित्वा यदेकस्मिन् राशौ सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा गोलाख्यो योगो भवन्ति। यदा राशिद्वये तदा युगाख्यः, यदा राशित्रये तदा शूलाख्यः, यदा राशिचतुष्के तदा केदाराख्यः, यदा राशिपञ्चके तदा पाशाख्यः, यदा राशिषट्के तदा दामाख्यः। यदा राशिसप्तके तदा वीणायोगो भवति।।११।।

पूर्व कथित योगों के लक्षण के अतिरिक्त यदि सब (सातों) ग्रह एक ही स्थान (राशि) में हों तो गोल नामक, दो राशि में सब ग्रह हों तो युग नामक, ३ से शूल, ४ से केदार, ५ से पाश, ६ से दाम और ७ राशि में सातों ग्रह हों तो वीणा नामक योग होता है-ये सात संख्यायोग कहलाते हैं।।११।।

दुःखितदरिद्रघातकृषिकरदुः शीलपशुपतिनिपुणानाम् ।
जन्म क्रमेण सुखिनः परभाग्यैस्सर्व एवैते ।।१२।।

सं० टी०- सांख्ययोगजातानां फलान्याह गोलाख्ये, योगे दुःखितानां जन्म भवति। युगाख्ये दरिद्रस्य। शूलाख्ये योगे धातुकस्य, धातु को वधकारी। केदाराख्ये कर्षकस्य। पाशाख्ये दुःशीलस्य। दामाख्ये पशु-पालस्य। वीणायां निपुणस्य। एवं विधानां जन्म क्रमेण। सांख्ययोगे

जाताः सर्व एव अन्यवित्तसुखिनो भवन्ति। अथैकस्मिन् राशौ चरे स्थिरं द्विस्वभावे वा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा रज्जुमुशलानलादियोगानां मध्ये अन्यतमे योगो भवति। यद्यप्युक्तयोगान् विहायेति। तथापि सांख्ययोगाः निरवकाशाः। अतः 'निरवकाशादिविधयः सावकाशात् विधीन् बाधन्ते' इति न्यायेन सांख्ययोगेन आश्रययोगोऽत्र बाध्यते यस्माद् गोलस्यान्य उपाय एवं नास्ति तथा दलयोगाकृतियोगयोः समकाले उपस्थानं नास्ति तथा दलयोगाश्रययोगयोरपि नास्ति। अथ दलयोगैः सांख्ययोगा युज्यते। तथापि दलयोगप्राबल्यं तथाकृतियोगाः आश्रययोगैः युज्यते तदा आकृतियोगफलं भवति। संख्यायोगा आश्रययोगाश्च आकृतियोगैरभिभूयन्ते आश्रययोगाः सांख्ययोगा नाभसादियोगाश्च समाप्तदशास्वपि फलप्रदा भवति।।१२।।

गोलयोग में उत्पन्न बालक दुःखी, युग में दरिद्र, शूल में घातक, केदार में कृषक, पाश में दुष्टप्रकृति, दाम में पशु-पालक और वीणा नामक योग में उत्पन्न जातक निपुण (सर्व कार्य कुशल) होता है। इन योगों में जन्म लेने वाले दूसरों के भाग्य से ही सुखी रहते हैं।।१२।।

विशेष- इस अध्याय में योगों के ४ विकल्प हैं। यथा-आश्रययोग ३, दलयोग २, आकृतियोग २०, सांख्ययोग ७ मिलकर कुल ३२ योग कहे गये हैं। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि-यहाँ आश्रय (रज्जु-मुसल-नल) योग में यदि अन्य आकृति आदि योगों के लक्षण भी प्राप्त हो तो आश्रययोग का फल निष्फल हो जाता है और तद्जन्य युक्त योग का फल समझना।

एवं सांख्ययोग में यदि पूर्व कथित आकृति आदि योगों के लक्षण हों तो वहाँ सांख्ययोग नहीं समझकर पूर्वोक्त लक्षणवाला नौकूटादि नामक आकृतियोग ही समझना चाहिये।

इति लघुजातके नाभसयोगाध्यायः।।१३।।

*

अथ स्त्रीजातकाध्यायः ।।१४।।

स्त्री के आकार तथा लक्षण-

स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किन्त्वत्र लग्नचन्द्रस्थम् ।
तद्बलयोगाद्वपुराकृतिश्च सौभाग्यमस्तमयात् ।।१।।

सं० टी०- अथ स्त्रीजातकाध्यायं व्याख्यास्यामः। तत्रादावेव पुरुषजन्मोक्तफलनिर्देशमाह। स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं यादृशमेव पुरुष-जातकं तादृशमेव स्त्रियाः। स्त्रीणां विशेषश्चंद्राक्रांतराशिवशेन लग्न-वशेन च विचारणीयम्। किं तदित्याह। तद्बलयोगाद्वपुराकृतिः। चंद्र-वशाच्च लग्नवाशाच्च वपुस्तस्या वक्तव्यम्। आकृतिश्च वक्तव्या। वपुः स्वरूपं आकृतिः संस्थानं स चेत् सौम्यग्रहयुक्तो भवति तदा सुभगा वाच्या। पापग्रहयुक्ते हृष्टे तस्मिन् दुर्भगेति वाच्यम्।।१।।

पूर्व कथित समस्त योगजफल जो कहे गये हैं, वे स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान ही समझना। परञ्च स्त्री के लग्न और चन्द्राश्रित राशि के अनुसार उसकी आकृति-प्रकृति-गुण आदि समझना। तथा सप्तम स्थान से उसके पति और सौभाग्य आदि का विचार करना चाहिये।।१।

युग्मर्क्षे लग्नेन्द्वोः प्रकृतिस्था रूपशीलगुणयुक्ता ।
ओजे पुरुषाकारा दुःशीला दुःखिता चैव ।।२।।

*सं० टी०-*चंद्रलग्नवशाद्वपुरित्येतदुक्तमिति तन्निर्देशार्थमाह। युग्मराशौ वृषादौ स्थिते चंद्रमसि लग्ने वा जाता स्त्री प्रकृतिस्था भवति। स्त्रीरूपेत्यर्थः। रूपशीलगुणयुता भवति ओजे विषमराशौ मेषादौ स्थिते चंद्रमसि लग्ने वा तस्मिन् जाता स्त्री पुरुषाकारा स्त्री भवति। दुःशीला दुःखिता च भवति। अथदिव चंद्रलग्नयोः एकस्मिन्युग्म-राशिगते अन्यस्मिन् ओजराशिगते मध्यगुणा च भवति।।२।।

यदि लग्न या चन्द्राश्रित राशि सम हो तो वह स्त्री, स्त्रियों के ऐसे

रूप-गुण-स्वभाव इत्यादि से युक्त और यदि विषम राशि हो तो पुरुषों के ऐसे आकार, दुष्ट-स्वभाववाली और दुःख भोगने वाली होती है।२

विशेष- लग्न और चन्द्रमा में एक सम और एक विषम राशि में हो तो मिश्रित स्वभाववाली समझना।

पति सम्बन्धी विचार-

अबले सप्तमभवने सौम्येक्षणवर्जिते च कापुरुषः।
भवति पतिश्चरभेऽस्ते प्रवासशीलो भवेद् भ्रान्ती।।३।।

सं० टी०- तस्याः पतिस्वरूपमाह। लग्नात्सप्तमभवने बलहीने सौम्यग्रहदर्शनविवर्जिते च जातायाः तस्याः भर्ता कापुरुषो भवति नाम कुत्सितपुरुषो भवति। जन्मभवनात्सप्तभवने चरराशिगते या जाता स्त्री तस्याः भर्ता परिभ्रमणशीलो भवति। स्थिरराशौ सप्तमस्थानगते नित्यं गृहस्थः द्विस्वभावे सप्तमस्थानगते मिश्र इति।।३।।

लग्न से सप्तमभाव में यदि ग्रह रहित हो, निर्बल हो और शुभग्रह से अदृष्ट हो तो ऐसे योग में उत्पन्न स्त्री का पति कुत्सित (नीच) स्वभाव वाला होता है। यदि चर संज्ञक राशियाँ स्त्री की कुण्डली में सप्तमभाव में पड़ी हों तो उस स्त्री का पति प्रवासशील (परदेश में भ्रमण करने वाला) होता है।।३।।

विशेष- कहने का तात्पर्य यह है कि यदि स्थिर राशि सप्तमभाव में हो तो उसका पति सर्वदा घर में ही निवास करनेवाला और यदि द्विस्वभाव राशि हो तो कभी परदेश में और कभी घर में रहनेवाला समझना।

अशुभयोग-

बाल्ये विधवा भौमे पतिसन्त्यक्ता दिवाकरेऽस्तस्थे।
सौरे पापैर्दृष्टे कन्यैव जारं समुपयाति।।४।।

सं० टी०- यस्या जन्म लग्नात्सप्तमेंऽगारको भवति सा बाल्ये एव विधवा भवति। सप्तमेऽर्के जाता या स्त्री सा पत्या संत्यज्यते। यस्या जन्मलग्नाच्छनैश्चरः सप्तमे भवति स च पापग्रहदृष्टः सा कन्यैव सती अनूढैव जारं समुपयाति प्राप्नोति।।४।।

स्त्री की जन्मकुण्डली में यदि सातवें भाव में मङ्गल हो तो बाल-विधवा, सूर्य हो तो स्वामी से त्यक्त, शनि हो और उस पर कोई पापग्रह की दृष्टि हो तो वह कन्या विना ब्याहे ही पर-पुरुष से सम्पर्क स्थापित कर चुकी रहती है।।४।।

विशेष- कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री की कुण्डली में सप्तमभाव में मङ्गल, रवि, शनि का रहना शुभ नहीं है, तिस पर यदि कोई पापग्रह की दृष्टि भी हो तो फलों में विशेषता अन्यथा शुभग्रह की दृष्टि से फल पूर्णरूप से नहीं होते, ऐसा समझना।

ब्रह्मवादिनी योग-

सितकुजजीवेन्दुसुतैर्बलिभिर्लग्ने समश्च यदि राशिः।
स्त्री ब्रह्मवादिनी स्यात्सुशास्त्रकुशला प्रतीता सा।।५।।

सं० टी०- येन योगेने जाता ब्रह्मवादिनी भूरिशास्त्रकुशला प्रतीता **च भवति** तदर्थमाह। यस्य जन्मनि लग्नगतः समराशिर्भवति। **शुक्रांगारगुरुबुधाश्च** तस्मिन्बलिनो भवति तदा जाता स्त्री ब्रह्मवादिनी **मोक्षशास्त्रकुशला** प्रतीता च भवति। प्रतीता विख्याता।।५।।

स्त्री की जन्मकुण्डली में यदि सम (वृष, कर्क आदि) राशि लग्न हो तथा शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, बुध से बलयुक्तहो तो वह स्त्री लोक में विख्यात, शास्त्र में निपुण और ब्रह्मविद्या को जानने वाली होती है।५।

विशेष-

पुञ्जन्मफलं यद्यन्न घटति वनितासु तत्तासाम्।
वक्तव्यं राज्याद्यं वृषणविनाशादि वा पापम्।।६।।

सं० टी०- अथ स्त्रियाः पुरुषजन्मफलासम्भवे तद्भर्तुरिति आदेशार्थमाह। स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यमित्युक्तं। यत्र शुभमशुभं वा स्त्रियो न घटते न संभवतीत्यर्थः। यथा राज्याद्यं शुभं, पापं वा वृषणविनाशादिकं तत्र तस्या भर्त्तुर्वक्तव्यम्, एवमन्यान्यघटमानानि वेदितव्यानि।।६।।

पुरुष जातक में कथित फल यदि स्त्री से घटित होने की सम्भावना

न हो तो वे फल उसके पति में कहने चाहिये। यथा-युद्धादि द्वारा राज्यलाभ, गुप्ताङ्गादिक सम्बन्धी विचार इत्यादि।।६।।

इति लघुजातके स्त्रीजातकाध्यायः।।१४।।

अथ निर्याणाध्यायः।।१५।।

मृत्युकारण ज्ञान-

सूर्यादिभिर्निधनगैर्हुतवसलिलायुधज्वरामयजः।
क्षुत्तृट्कृतश्च मृत्युः परदेशे नैधने चरभे।।१।।

सं० टी०- अथ निर्याणाध्यायः व्याख्यास्यामः। तत्रादौ सूर्यादिभिरष्टगैर्मृत्युज्ञानमाह। यस्य जन्मलग्नादष्टमस्थानेऽर्को भवति तस्याग्निहेतुको मृत्युर्भवति। यस्य चंद्रोऽष्टमो भवति तस्य जलात्, यस्य भौमोऽष्टमो भवति तस्याऽऽयुधहेतुको मृत्युः। यस्य बुधोऽष्टमो भवति तस्य ज्वरहेतुको मृत्युः। यस्य गुरुरष्टमो भवति तस्यामयात्। आमयादजीर्णादिरोगतः।

यस्य शुक्रोऽष्टमो भवति तस्य क्षुद्धेतुको मृत्युः। यस्य शनैश्चरोऽष्टमगो भवति तस्य तृड्ढेतुको मृत्युर्भवति। बहवो ग्रहाः अष्टमस्थानगता भवन्ति तदा यो बलवान् तद्धेतुको मृत्युर्भवति। एवं प्रकारे जाते दर्शनार्थज्ञानमाह। यस्य लग्नादष्टमो राशिश्चराख्यो भवति तस्य परदेशे मृत्युर्भवति अर्थाद्यस्य लग्नादष्टमः स्थिरराशिर्भवति तस्य स्वदेशे मृत्युः। यस्याष्टमो द्विस्वभावराशिर्भवति तस्य मार्गे मृत्युर्भवति।।१।।

लग्न से अष्टम स्थान में सूर्य हो तो अग्नि से मरण, चन्द्र हो तो जल हेतु से, मङ्गल हो तो अस्त्र-शस्त्रादि से, बुध हो तो ज्वर से, बृहस्पति हो तो अजीर्णादि रोग से, शुक्र हो तो तृषा (प्यास) से और शनि हो तो क्षुधा (भूख) हेतु से मरण समझना। यहाँ अष्टम भाव में यदि अनेक ग्रह हों तो उनमें जो बली हो उसके उक्तविषयक हेतु से मरण कहना। तथा अष्टम स्थान में चर संज्ञक राशि हो तो परदेश में, स्थिर हो तो घर में और यदि द्विस्वभाव हो तो मार्ग में मरण होता है।१।

विशेष- बृहज्जातक में शुक्र और शनि के लिए 'तृट्क्षुत्' और लघुजातक में 'क्षुत्तृट्' इस प्रकार के पाठभेद के उपलब्ध ग्रन्थों में मिलने से लोगों को यह असङ्गत प्रतीत होता है। वास्तव में इससे किसी प्रकार की कोई हानि नहीं, कारण शुक्र और शनि दोनों से समान फल होने के कारण 'क्षुत्तृट्' या 'तृट्क्षुत्' दोनों पाठ सङ्गत ही हैं। जैसे भूख-प्यास या प्यास-भूख दोनों ही प्रयोग होते हैं।

यो वा निधनं पश्यति बलवांस्तद्धातुकोपजो मृत्युः ।
लग्नात् त्र्यंशपतिर्वा द्वाविंशः कारणं मृत्योः ।।२।।

सं० टी०- यस्य लग्नादष्टमं स्थानं शून्यं ग्रहवर्जितं भवति तस्य मृत्युज्ञानमाह। यदा अष्टमस्थानं शून्यमादित्यः पश्यति तदा पित्त-प्रकोपेण म्रियते। यदा चंद्रः पश्यति तदा कफवातप्रकोपेण, भौमस्तदा पित्तप्रकोपेण, बुधश्च तदा वातपित्तश्लेष्मणां त्रयाणामपि प्रकोपेण, बृहस्पतिस्तदा कफप्रकोपेण, शुक्रस्तदा कफवातप्रकोपेण, सौरिस्तदा वातप्रकोपेण। यदा बहवो ग्रहाः अष्टमस्थानं पश्यति तदा तेषां मध्ये यो बली भवति तस्य धातुकोपेन मृत्युर्भवति। यस्य जन्मन्यष्टमं स्थानं केनचिद्युतदृष्टं न भवति तस्य मृत्युकारणज्ञानमाह। यस्य जन्मलग्नाद्यो लग्नत्र्यंशः द्रेष्काणतस्माद् द्वाविंशो यो द्रेष्काणः तस्य योऽधिपतिस्तस्य यत्कारणमुक्तं हुतवहसलिलादि तत्कृतो मृत्युर्भवति।।२।।

अथवा यदि अष्टमभाव ग्रह रहित हो तो जो ग्रह अष्टमभाव को देखे उस ग्रह के धातु (पूर्व ग्रहस्वरूपाध्याय में कहे गये कफ, पित्त, वात) के प्रकोप से मरण होता है। यदि अनेक ग्रह देखते हों तो उनमें जो बली हो उसके धातु से मरण समझना। कदाचित् उक्तयोग भी न हो तो उस हालत मेंलग्न में जो द्रेष्काण हो उससे २२ वाँ द्रेष्काण का स्वामी मरण का कारण होता है।।२।।

विशेष- अष्टम भाव यदि बहुत ग्रहों से युत-दृष्ट हो तो सर्व-धातु प्रकोप से मरण कहना। कहा भी है-

'यो बलयुक्तो निधनं पश्यति तद्धातुकोपजो मृत्युः ।
तत्संयुक्तस्तनुजो बहुवलिभिर्वहुप्रकारः स्यात् ।।'

मरणान्तर गतिस्थान ज्ञान-

सुरपितृतिर्यङ्नरकान् गुरुरिन्दुसितावसृग्रवीज्ञयमौ।
रिपुरन्ध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चाऽस्तारिनिधनस्थाः।।३।।

सं० टी०- लग्नात्स्वषष्ठस्थानस्था ग्रहः स्वपठितां गतिं नयति। सप्तमस्थोऽष्टमस्थश्च। यदैते त्रिष्वपि तदा तेषां यो बलवान् स्वस्वपठितां गतिं नयति। अथ त्रीण्येतानि शून्यानि भवन्ति तदा पुरुष जन्मलग्नात्षष्ठे स्थाने यो द्रेष्काणस्तथाऽष्टमे तयोर्यावधिपतिस्तयोर्यो बलवान् स स्व-पठितां गतिं नयति। तत्र जन्मलग्ने प्रथमद्रेष्काणस्तदा षष्ठेऽपि राशौ प्रथमो भवति। अथ जन्मलग्ने द्वितीयस्तदा षष्ठेऽपि राशौ द्वितीयो भवन्ति। अथ जन्मलग्ने तृतीयः षष्ठे तृतीयः। एवं सप्तमाष्टमयोरपि न केवलं यावत्सर्वेष्वेव एवमपि नवांश कल्पना तत्र बृहस्पतिर्यदा गतिदायको भवति तदा देवलोके गति प्रयच्छति। चन्द्रशुक्रयोरन्मतमः पितृलोके गतिं प्रयच्छति। आदित्यभौमयोरन्यतमस्तिर्यङ्लोके गतिं प्रयच्छति। बुधशनैश्चरयोरन्यतमा नरके प्रयच्छति।।३।।

जन्मलग्न से ६।७।८ स्थानगत ग्रहों में यदि बृहस्पति बली हो तो वह प्राणी देवलोक, चन्द्रमा या शुक्र हो तो पितृलोक, मङ्गल या सूर्य बली हो ते मर्त्यलोक और यदि बुध या शनि बली हो तो नरकगामी होता है। एवं यदि उक्त (६।७।८) भवनों में कोई ग्रह न हो तो षष्ठ और अष्टमभावगत द्रेष्काण के स्वामियों में जो बली हो उसका जो लोक कहा गया है, उस लोक में जाता है।।३।।

मोक्षयोग-

षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुरुच्चो भवति मीनलग्ने वा।
शेषैरबलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः।।४।।

सं० टी०- मोक्षयोगज्ञानमाह। यस्य जन्मनि लग्नात् षष्ठे स्थानेऽष्टमे वा केन्द्राणामन्यतमे वा बृहस्पतिर्भवति स चोच्चस्थो भवति तदा मोक्षो

भवति। अथवा लग्नं मीनो भवति तत्र बृहस्पतिवर्ज्यमन्ये ग्रहा बलवर्जिता भवन्ति तदा जातस्य मोक्षो भवति। एवंविधे योगे मरणकाले मोक्षो भवतिति। तत्र जन्ममरणं तत्सर्वेषामपि गतियोगानां ज्ञातव्यम्।।४।।

जन्मलग्न से ६।८।१।४।७।१० इन भवनों में यदि बृहस्पति उच्च (कर्क) का हो अथवा मीनलग्न में बृहस्पति हो और अन्य सब ग्रह बलहीन हों तो उस जातक को मोक्षलाभ होता है। इस प्रकार का योग यदि किसी के मरणकाल में भी हो तो मरणोपरान्त मुक्ति कहना।४।

पूर्वजन्म वृत्तान्त-

गुरुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ
विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः।
दिनकरशशिवीर्याऽधिष्ठितत्र्यंशनाथाः
प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गह्रासादनूके ।।५।।

सं० टी०- यो जातो जन्तुः स कस्माल्लोकादागत इइ ज्ञानार्थमाह। आदित्यचन्द्रयोर्यो बलवान्स यस्मिन्द्रेष्काणे व्यवस्थितः तस्य द्रेष्काणस्य योऽधिपस्तस्य यो लोकस्तस्मादागत इति वक्तव्यम्। स यदि द्रेष्काणो गुरुसम्बन्धी भवति तदा देवलोकगत इति वाच्यम्। चन्द्रशुक्रयोरन्यतरसंबन्धी चेद्भवति तदा पितृलोकादागत आदित्यभौमयोरन्यतरसंबंधी चेद्भवति तदा तिर्यङ्लोकात्। बुधसौरयोरन्यतर संबन्धी चेद्भवति तदा नरक-लोकादागतः। यस्मांल्लोकादागतः तत्रापि श्रेष्ठमध्यहीनत्वमाह। यद्ग्रह-दर्शितलोकाद्यस्य जन्म स चेद् स्वोच्चराशिस्थः तत्रासौ श्रेष्ठ आसीदिति ज्ञेयम्। अथोच्चराशिच्युतो नीचराशिमप्राप्यावस्थितदासौ मध्यम आसीदिति ज्ञेयम्। अथ नीचराशिस्थितस्तदाधम आसीदिति ज्ञेयम्।।५।।

सूर्य और चन्द्रमा, इन दोनों में जो बलवान् होकर जिस द्रेष्काण में हो उस द्रेष्काण का जो स्वामी हो उसके कथित लोक से वह प्राणी आया है-ऐसा समझना। यदि वह द्रेष्काण बृहस्पति का हो तो देवलोक से, चन्द्रमा या शुक्र का हो तो पितृलोक से, सूर्य या मङ्गल का हो तो

मर्त्यलोक से और बुध या शनि के द्रेष्काण का हो तो नरक से आया हुआ समझना। तत्तत्लोक से आये हुए का ज्ञान करानेवाला जो द्रेष्काणपति है, वह यदि अपने उच्च का हो तो उक्तलोक में श्रेष्ठ था, उच्च और नीच, दोनों के मध्य में हो तो मध्यम श्रेणी में था और यदि नीच में हो तो निकृष्ट कोटि में था-ऐसा कहना।।५।।

इति लघुजातके निर्याणाध्यायः।।१५।।

अथ नष्टजातकाध्यायः।।१६।।

लग्न और जन्मेष्ट जानने के लिए लग्न और ग्रहों के गुणकाङ्क-

गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले कन्यामृगौ चक्रमात्
संवर्ग्या दशकाष्टसप्तविषयैः शेषाः स्वसंख्यागुणाः।
जीवारास्फुजिदैन्दवः प्रथमवच्छेषा ग्रहाः सौम्यव -
द्राशीनां नियतो विधिर्ग्रहयुतैः कार्या च तद्वर्गणा।।१।।

सं० टी०- तत्र प्रश्नकाले तात्कालिकलग्नं कृत्वा लिप्तापिंडीकार्यम्। तत्र तस्य लिप्तापिण्डीकृतस्य गुणाकारविज्ञानार्थमाह। वृषलग्नगतं दशभिर्गुणयेत् सिंह च दशभिरेवं मिथुनमष्टभिर्वृश्चिकमप्यष्टभिः मेषं सप्तभिस्तुलामपि सप्तभिर्गुणयेत्। कन्यां पञ्चभिः मकरमपि पञ्चभिः कर्कटलग्नगतं चतर्भिर्गुणयेत्। धनुर्नवभिः कुंभमेकादशभिः मीनं द्वादशभिरेव तावल्लग्नं स्वगुणाकारेणावेश्यमेव गुणयेत्। लग्ने यदि ग्रहो भवति तत्र गुणाकारविधिः गुरौ लग्नगते दशभिर्गुणयेत्। भौमे लग्नगते अष्टभिः शुक्रे सप्तभिः बुधे पंचभिः शेषा आदित्यचंद्रशनयस्तेषां प्रत्येकं पंचभिर्गुणाकारः एवं तात्काललिप्तापिण्डीकृतं लग्नमवश्यं राशिगुणकारेण गुणयेत्। ततो ग्रहसंभवे सति ग्रहोक्तगुणकारैरपि एवं गुणितमेकान्ते स्थापयेत्।।१।।

लग्न में वृष या सिंह हो तो लग्न को कलात्मक बना कर १० से, मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से, कन्या या

मकर हो तो ५ से और शेष (कर्क-धनु-कुम्भ-मीनराशि) लग्न हो तो अपनी संख्या तुल्य (अर्थात् कर्क को ४ से, धनु को ९ से, कुम्भ को ११ से, मीन को १२) से गुणा कर कलापिण्ड समझे। एवं लग्न में गुरु हो तो उस (कलापिण्ड) को १० से, मङ्गल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से और अन्य (सूर्य-चन्द्र-शनि) हो तो ५ से गुणा करे। यदि कई ग्रह प्रश्नलग्न में पड़े हों तो सबों के गुणक से पुनः पुनः गुणा करने से स्पष्ट कलापिण्ड होता है।।१।।

उदाहरण- संवत् २०२४ मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी को किसी ने अपने नष्ट जन्माङ्क जानने के लिए प्रश्न किया, उस समय में लग्न ९।५।१५।५ है और लग्न में मङ्गल है।

प्रश्नकालिक कुण्डली

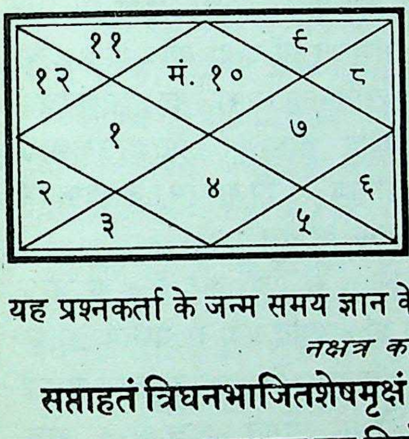

यहाँ लग्न को कलात्मक बनाने से १६५१५।५ इनको मकर के गुणकाङ्क ५ से गुणा किया तो ८२५७५।२५ इनको लग्नगत मङ्गल के गुणकाङ्क ८ से गुणा किया तो ६६६०३।२० यह प्रश्नकर्ता के जन्म समय ज्ञान के लिए स्फुट पिण्ड बना।

नक्षत्र का ज्ञान

सप्ताहतं त्रिघनभाजितशेषमृक्षं
दत्वाऽथवा नव विशोध्य नवाऽथवा स्यात्।
एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः
प्रष्टुर्वदिदुदयराशिवशेन तेषाम्।।२।।

सं० टी०- अथ नक्षत्रानयनमाह। प्राक् योऽसौ राशिः पृथक्

स्थापितस्ततः सप्तभिर्गुणयेत् ततस्तत्र नवदेयाः शोध्या वा न किञ्चिद्वा कदोच्यते। यदा प्रश्नलग्ने प्रथमद्रेष्काणो भवति तदा नव देया। अथ द्वितीयस्तदा न देया न शोध्याः। अथ तृतीयस्तदा नव शोध्याः। एवं कृत्वा तस्य राशेः सप्तविंशत्या भागमाहरेत्। ततो यावत्संख्याकोऽवशेषो भवति तावत्संख्यमश्विन्यादितो यन्नक्षत्रं भवति तन्नक्षत्रं तस्य वाच्यम्। अथ पुरुषः स्वपत्न्या नक्षत्रं पृच्छति तदा तात्कालिके लग्ने राशिषट्कं दत्वा तस्य लग्नस्य लिप्तापिंडीकृत्वाऽऽगतं राशि गुणकारेण गुणयेत्। लग्ने ग्रहश्चेत्तद्गुणकारेण गुणयेत्। ततस्तस्य सप्तगुणस्य प्राग्वन्नवांकविशोधनं कर्तव्यम्। ततस्तस्य सप्तगुणस्य प्राग्वन्नवांकविशोधनं कर्तव्यम्। ततस्तस्य सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषांकसमं तत्पत्न्या नक्षत्रं वाच्यम्। अथ भ्रातुः पृच्छति तदा तत्काललग्ने राशिद्वयं दत्वा एतदेव कर्म कृत्वा तत् भ्रातुः नक्षत्रं वाच्यम्। अथ पुत्रस्य पृच्छति तदा तत्काललग्ने राशिचतुष्टयं दत्वा तदेव कर्म कृत्वा तत्पुत्रनक्षत्रं वाच्यम्। अथ शत्रोः पृच्छति तदा तत्काललग्ने राशिपंचकं दत्वा तदेव कर्म कृत्वा तच्छत्रुनक्षत्रं वाच्यम्। एतदुपलक्षणार्थं त्रिराशिसहितात्तात्कालिकाल्लग्नात् तन्मित्र-स्यापि वाच्यम्। नक्षत्रानयनं उपलक्षणार्थमेव सकलमपि नष्टजातकं वाच्यम्।।२।।

उक्त (पूर्वानीत) कलापिण्ड को ७ से गुणा कर २७ के भाग देने से जो बचे तत् तुल्य संख्यक अश्विन्यादि क्रम से प्रश्नकर्ता का जन्म नक्षत्र समझना। यदि वह नक्षत्र असम्भव अर्थात् (ज्ञात समय के आसन्न से न्यूनाधिक) प्रतीत हो तो आगत नक्षत्र में ९ जोड़ कर अथवा ९ घटा कर नक्षत्र का ज्ञान करना चाहिये। एवं इसी तरह यदि कोई अपनी स्त्री का नक्षत्र पूछे तो प्रश्नकालिक लग्न से सप्तम राशि द्वारा प्रश्नकर्ता की स्त्री का एवं तद्भावानुसार सहोदरादि का भी विचार करना। इत्यादि।।२।।

यहाँ *'नवकदानविशोधनाभ्याम्'* से द्रेष्काणवश ९ जोड़ना और घटाना, ऐसा पाठ संस्कृत टीकाकार-भट्टोत्पल ने रक्खा है एवं कोई (अन्य आचार्य) चरादिराशि से कहते है। किन्तु ये दोनों ही पाठ निर्मूल और युक्तिशून्य हैं। क्योंकि अज्ञात विषय ज्ञानार्थ ही प्रश्न किये जाते हैं-उससे जो वर्ष या नक्षत्रादि आते हैं, उसमें जोड़ने या घटाने की जो क्रिया कही गई है उसकी सम्भावना-असम्भावना समझकर ही निश्चय किया जाता है, न कि सर्वत्र!

यथा-प्रश्नकर्ता नें कहा कि मेरा जन्म वैशाख मास में पञ्चमी और पूर्णिमा के मध्य है, यदि कथित विधि से नक्षत्र संख्या ४ (रोहिणी नक्षत्र) आया, किन्तु रोहिणी वैशाख शु० ५ से १५ के बीच असम्भव है। अतः सम्भव हेतु ४ में ९ जोड़ दिया जाय तो १३ वीं संख्या (चित्रा-नक्षत्र) में प्रश्नकर्ता का जन्म कहना युक्तिसङ्गत होगा, अन्यथा नहीं।

कहने का तात्पर्य यह है कि-गणितागत संख्या प्रत्यक्ष में भी ठीक घटती हो तो वहाँ जोड़ने या घटाने की आवश्यकता नहीं है, जहाँ न्यूनाधिक जान पड़े वहाँ उक्त क्रिया करे। यही मूल श्लोक का आशय है तथा मुनियों का भी अभिप्रेत है।

वर्ष-ऋतु-मास आदि का ज्ञान-

वर्षर्तुमासतिथयो द्युनिशं ह्युडूनि
वेलोदयर्क्षनवभागविकल्पनाः स्युः।
भूयो दशादिगुणिताः स्वविकल्पभक्ता
वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम्।।३।।

सं० टी०-अथ वर्षाद्यानयनम्। लग्नं तावत्तात्कालिकं लिप्तापिण्डीकृतं राशिगुणकारहतं संभवात्तु ग्रहगुणकारहतमपि एकांते स्थापितं तद्दशादिगुणं कारयेत्। एतदुक्तं स राशिस्थानचतुष्टये कार्यः। एकत्र दशगुणः कार्यः,

द्वितीये स्थानेऽष्टगुणः, तृतीये सप्तगुणः, चतुर्थे पंचगुणः। ततस्तेषां प्राग्वत् नवकदानविशोधनं कृत्वा स्वविकल्पैर्भागमपहृत्यावशेषं वर्षादयो ज्ञेयाः। ३।

अब वर्ष, ऋतु आदि समस्त विषय ज्ञान का प्रकार कहते हैं। जैसे पूर्व नक्षत्रानयन में बतलाया जा चुका है, उसी प्रकार पुनः १०, ८ आदि गुणकों से गुणित पिण्ड में अपने-अपने विकल्प (जैसे वर्ष ज्ञान के लिए १२० के, ऋतु के ६, मास के १२, पक्ष के २, तिथि के १५, नक्षत्र के २७, दिन-रात्रि के २, वार के ७, लग्नराशि के १२, होरा के २, नवमांश के ९ इत्यादि) से भाग देकर जो शेष बचे उसमें पूर्ववत् ९ जोड़ या घटाकर वर्ष, ऋतु आदि समझना।।३।।

वर्ष ऋतु-मास पक्ष तिथि-आनयन-

विज्ञेया दशकेष्वब्दा ऋतुमासास्तथैव च।
अष्टकेष्वपि मासार्धं तिथयश्च तथा स्मृताः।।४।।

सं० टी०- तत्र ज्ञातं कस्माद्राशेः कस्यानयनं तत्र ज्ञानार्थमाह। एते चत्वारो राशयः स्थापितास्तेषां मध्ये यो दशगुणो राशिः तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधनं कर्तव्यं एवं कृत्वा दशगुणकर्मयोग्यं स्थापयेत्। एवं पृथक्कर्मभूमि स्थाप्य तस्य विंशत्याधिकेन शतेन भागमपहृत्य योऽकोऽवशिष्यते तदङ्कमवर्याणि जानाति इति वक्तव्यम्। तस्यैव षड्भिर्भागमपत्य तत्र योऽकोऽवशिष्यते तदंकसमे शिशिरादारभ्यतौ जात इति वक्तव्यम्। तस्यैव कर्मयोग्यस्य राशेर्द्वाभ्यां भागमपहृत्य यदैकोऽवशिष्यते तदा ज्ञाततौ प्रथमे मासि जन्म इति वाच्यम्। शून्यमवशिष्यते तदा तद्द्वितीये मासि जातः। एवं कृत्वा दशहतः कर्मयोग्यो राशिरपास्यः। यस्य विंशत्यधिकवर्षशता-दप्यधिकं जन्मतो व्यतीतं भवति तस्य नष्टजातकज्ञानपायो नास्ति। योऽसावष्टहतो राशिस्तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधनविधानं कृत्वा कर्मयोग्यराशिं स्थापयेत्। ततस्तस्य द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा शुक्लपक्षे जात इति वक्तव्यम्। न किंचिदवशिष्यते तदा कृष्णपक्षे

जात इति वक्तव्यम्। तस्यैव कर्मयोग्यस्य राशिः पंचदशभिर्भागमपहृत्य-योऽवशिष्यते तदंकसमसंख्यातिथौ जात इति वाच्यम्। एवं कृत्वाऽष्ट-गुणकर्मयोग्यो राशिरपास्यः।।४।।

उक्त (पूर्वानीत) स्फुट कलापिण्ड को १० से गुणा कर वर्ष के विकल्प (१२०) से भाग देकर शेष तुल्य वर्ष एवं १० गुणित पर से ही ऋतु, मास समझना। तथा ८ गुणित कलापिण्ड पर से पक्ष और तिथि का ज्ञान करना।।४।।

विशेष- स्फुट कलापिण्ड को १० गुणित करके १२० के भाग देने से जैसे वर्ष निकला है, उसी प्रकार १० गुणित अङ्क में ६ का भाग देने से शेष जन्मकालिक शिशिरादि (अर्थात् १ शेष बचे तो शिशिर, २ से वसन्त, ३ से ग्रीष्म, ४ से वर्षा, ५ से शरद्, ६ से हेमन्त) ऋतु होती है तथा उसी १० गुणित अङ्क में २ का भाग देने से १ शेष बचे तो उक्त ऋतु का प्रथम मास; शून्य शेष हो तो दूसरा मास जानना।

एवं जब मास का ज्ञान हो जाय तो पिण्ड को ८ से गुणाकर २ का भाग देकर १ शेष से शुक्लपक्ष और शून्य शेष बचे तो कृष्णपक्ष समझना। तथा उसी (८ गुणित) पिण्ड में १५ का भाग देने से जो शेष बचे वह आये हुए पक्ष की वर्तमान प्रतिपदादि तिथि जाने।।

दिन-रात्रि तथा नक्षत्रानयन-

दिवारात्रिप्रसूतिं च नक्षत्रानयनं तथा।
सप्तसङ्ख्येऽपि वर्गे तु नित्यमेवोपलक्षयेत्।।५।।

सं० टी०- योऽसौ सप्तहतो राशिस्तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधनं कृत्वा ततः कर्मयोग्यं राशिं स्थापयेत्। तस्या द्वाभ्यां भागमपहृत्य कोऽव-शिष्यते तदा दिने जात इति वाच्यम्। अथ न किंचिदवशिष्यते तदा रात्रौ इति वक्तव्यम्। तस्यैव कर्मयोग्यराशेः सप्तविंशत्या भागमपहृत्य योंऽकोऽ-वशिष्यते तदंकसमसंख्यके नक्षत्रे अश्विन्यादित आरम्भजात इति वाच्यम्।

अस्य कर्मणः पुनरपि विधानं नक्षत्रानयनस्य बाहुल्येनोपयोगित्वात्।

एवं ७ गुणित पिण्ड पर से दिन, रात्रि और नक्षत्र का ज्ञान कराना।।५।।

विशेष- ७ गुणित कलापिण्ड के जो अङ्क हो उसमें २ से भाग देकर १ शेष में दिन और शून्य शेष बचे तो रात्रि में जन्म कहना। तथा नक्षत्र जानने की विधि पूर्व कह चुके हैं।

इष्टकाल लग्न होरा-नवमांशानयन-

वेलामथ विलग्नं च होरामंशकमेव च।
पञ्चकेषु विजानीयान्नष्टजातकसिद्धये।।६।।

सं० टी०- यस्मिन्दिनं पुरुषजन्म जातं तस्य दिनस्य प्रमाणं घटिकादिकं कार्यं, अथ रात्रौ जन्म जातं तदा रात्रिप्रमाणं ततो योऽसौ पंचगुणो राशिः स्थापितः तस्य प्राग्वदेव नवकदानविशोधनं कृत्वा ततो दिनप्रमाणेन रात्रिप्रमाणेन च भागमपहृत्य यदवशिष्यते तस्मिन् काले दिनगते रात्रिगते च तस्य जन्म वाच्यम्। अथ विलग्नमिति काले ज्ञाते राश्यादिलग्नं कार्यम्। तत्र तस्य लग्नस्य होराद्रेष्काणनवांशद्वादशांशक-भागाः कार्याः ततस्तस्य तात्कालिका ग्रहाश्च कर्तव्याः। ततो यथाभिहितेन विधिना दशान्तर्दशाष्टकवर्गादिरभिहितस्य फलानां निर्देशः कार्यः। एवं नष्टजातकं साधयेत्।।६।।

एवं ५ गुणित स्पष्ट कलापिण्ड पर से इष्टकाल, ज़न्मलग्न, होरा, नवमांश, द्वादशांश इत्यादि का ज्ञान करना।।६।

*विशेष-*५ गुणित कलापिण्ड के जो अङ्क हो उसमें पूर्व साधित विधि से यदि दिन का जन्म आता हो तो दिनमान से और यदि रात्रि में जन्म हो तो रात्रिमान से भाग देने पर जो शेष बचे वह दिन का अथवा रात्रि का इष्टकाल होता है। आये हुए इष्टकाल पर से जन्मलग्न, होरा इत्यादि का ज्ञान करके नष्ट जन्माङ्क बनाना चाहिये।

*उदाहरण-*पूर्व साधित स्फुट पिण्ड ६६०६०३।२० है। इसको १० से

गुणा कर १२० का भाग दिया तो ३३ वर्ष ४ मास प्रश्नकर्ता की आयु आयी। पिण्ड पर से जो वर्ष संख्या आवे वह यदि प्रष्टा की आयु के आसन्न ही देखने में आवे तब तो आगत संख्या तुल्य ही प्रश्नकर्ता की भी आयु बतावे अन्यथा यदि प्रश्नकर्ता के वयस से न्यून या अधिक मालूम हो तो उसमें ९ को तब तक जोड़े या घटावे जब तक प्रष्टा के वयसतुल्य सम्भव हो।

प्रयोजन-जन्मकालिक वर्ष, मासादि से जातक के जीवन का फल मुनियों ने कहा है। यदि किसी को अपने बयस का ज्ञान न हो और अपने जन्मसंवत्सरादि का फल जानना चाहे, वहाँ उक्तविधि से निश्चित किये हुए आगत नर्ष को वर्तमान संवत् में घटाने से शेष प्रभवादि नामक जन्म संवत्सर होगा, एवं तदनुसार फल कहे। आवश्यकता इस बात की है कि दैवज्ञ प्रश्नकर्ता के उन्हीं विषयों पर विचार करें, जिन्हें वह न जानता हो। इस प्रकार यत्नपूर्वक किया गया दैवज्ञ का परिश्रम असफल नहीं होता।

वासुदेवभिधानेना मया काशीनिवासिना।
श्रीसीतारामझानाम - गुरोः पदसरोरुहात्॥
लब्ध्वा बोधलवं दृष्ट्वा कृतां भट्टोत्पलादिभिः।
व्याख्यां मनोरमाञ्चापि क्वचिन्मूलविरोधिनीम्॥
प्रत्यक्षदोषयुक्तां च तां संशोध्य प्रयत्नतः।
कृता नृभाषया व्याख्या सदुदाहरणान्विता॥
वर्षे जिननखैस्तुल्ये वैक्रमे मार्गशीर्षकि।
शुक्ले विश्वतिथौ भौमे सम्पूर्णाम्बानुकम्पया॥

इति राजस्थानमण्डलान्तर्गत 'विसाऊ' ग्रामनिवासि-श्री नागरमलगुप्तात्मजदैवज्ञवाचस्पति-श्रीवासुदेवकृत-लघुजातके सारार्थबोधिनी हिन्दी टीका समाप्ता।

शुभम्

लग्नादि द्वादशभाव से विचारणीय विषय-

इस ग्रन्थ में लिखे हुए लग्नादि द्वादशभावों के ग्रहजन्य शुभाशुभ फलों का प्रभाव किन-किन भावों से किन-किन विषयों पर पड़ता है, प्रथम यह जानना अत्यावश्यक है। इसलिये किस भाव से किन विषयों का विचार करना चाहिये यह आर्षवचन के साथ विज्ञजनों के उपकारार्थ लिख देना उचित समझता हूँ। यथा-

मूर्तिमायुश्च कीर्तिञ्च साङ्गोपाङ्गं निरूपयेत् ।
स्थितिं स्वरूपं सम्पत्तिं जन्मलग्नाद्विचिन्तयेत् ।।१।।

भाषा- लग्न (प्रथमभाव) से शरीर, रंग, आयु, कीर्ति, स्थिति, स्वरूप तथा सम्पत्ति सम्बन्धी का सांगोपांग विचार करना चाहिए।।१।।

धनं सुखं च भुक्तिं च सत्यं वाक्पटुतामपि ।
सव्यनेत्रफलं चैव धनस्थानाद्विचिन्तयेत् ।।२।।

भाषा- धन (द्वितीयभाव) से धन, सुख, भोग, सत्यता, वाक्पटुता और दक्षिण नेत्र सम्बन्धी विचार करना चाहिए।।२।।

सहजं विक्रमं कण्ठं क्षुधामाभरणानि च ।
पात्राऽपात्रफलं भावात् तृतीयात् परिचिन्तयेत् ।।३।।

भाषा- तृतीयभाव से सहोदर, पराक्रम, कण्ठ, क्षुधा, भूषण और पात्रता-अपात्रता का विचार करना चाहिए।।३।।

मातरं वाहनं बन्धुं सुखं सिंहासनं गृहम् ।
मित्रं बाहुं भुवं भावाच्चतुर्थात् परिचिन्तयेत् ।।४।।

*भाषा-*चतुर्थभाव से माता, वाहन, बन्धु, राज्यसुख, गृह, मित्र, बाहु सम्बन्धी विचार करना चाहिए।।४।।

पुत्रं बुद्धिं च मन्त्रं च देवताभक्तिमुत्तमाम् ।
हृदयं मातुलं भावात् पञ्चमात्परिचिन्तयेत् ।।५।।

भाषा-पञ्चमभाव से पुत्र, बुद्धि, मन्त्र, भक्ति, हृदय और मातुल सम्बन्धी विचार करना चाहिए।।५।।

रिपुज्ञातिबलं रोगमुदरं शत्रुमेव च।
षष्ठस्थानादिदं नाम तत्तन्नामफलं दिशेत्।।६।।

भाषा- षष्ठभाव से रिपु, ज्ञाति, बल, रोग, उदर आदि का विचार करना चाहिए।।६।।

कलत्रभोगं छत्रं दन्तनाभी च सप्तमात्।
गुदं मरणकञ्चैवमायुः स्थानाद् विचिन्तयेत्।।७।।

भाषा- सप्तमभाव से स्त्री-सुख-भोग, छत्र, दन्त और नाभि सम्बन्धी रोग एवं अष्टमभाव से गुह्याङ्ग, जीवन-मरण आदि का विचार करना चाहिए।।७।।

भाग्यं तीर्थं च धर्मं च तपः स्थानादिति क्रमात्।
मानं राज्यं कर्म-कीर्तिं व्यापारं दशमात् तथा।।८।।

भाषा- नवमभाव से भाग्य, तीर्थ, धर्म, सम्बन्धी एवं दशमभाव से मान, राज्य, कर्म, कीर्ति और व्यापार इत्यादि का विचार करना चाहिए।।८।।

लाभं चैवाऽग्रजं कर्णं जङ्घामेकादशाद् वदेत्।
व्ययं पितृधनं वादं वामनेत्रं व्ययात् तथा।।९।।

भाषा- एकादश भाव से लाभ, ज्येष्ठ भ्राता, कर्ण, जङ्घा सम्बन्धी एवं द्वादशभाव से खर्च, पितृधन, वाद-विवाद और वामनेत्र का विचार करना चाहिए।।९।।

ज्योतिष शास्त्र का अमूल्य संग्रह आप अपने यहाँ स्वयं करें।

१. बृहद् पाराशरहोराशास्त्रम् भाषा-टीका - ज्योतिष शास्त्र का सबसे बृहद व प्राचीन ग्रन्थ पं० गणेशदत्त पाठक द्वारा सम्पादित। *मूल्यः २००)-*

२. मानसागरी पद्धति भाषा-टीका- ज्योतिषाचार्य पं० सीताराम झा द्वारा संशोधित परिशिष्ट एवं जन्म-पत्र-प्रबोध सहित। *मूल्यः ५०)-*

३. बृहज्ज्ञातक भाषा-टीका- ज्योतिषाचार्य पं० सीताराम झा द्वारा सम्पादित ग्लेज कागज पर छपा। *मूल्यः १००)-*

४. ताजिक नीलकण्ठी भाषा-टीका- श्री विश्वनाथ दैवज्ञ विरचित संस्कृत टीका तथा सोदाहरण भाषा-टीका सहित श्रीवासुदेव गुप्त द्वारा संशोधित ग्लेज कागज पर छपा। *मूल्यः ६०)-*

५. जातकाभरण भाषा-टीका- पं० सीताराम झा द्वारा सम्पादित परिशिष्ट सहित ग्लेज कागज पर छपा। *मूल्यः ८०)-*

६. जातकदीपिका भाषा-टीका- आचार्य पं० मधुसूदन शास्त्री द्वारा सम्पादित ग्लेज कागज पर छपा। *मूल्यः ६०)-*

७. बृहज्यौतिषसार भाषा-टीका- ज्योतिषाचार्य श्रीरूपनारायण शर्मा द्वारा सम्पादित ग्लेज कागज पर छपा। *मूल्यः ५०)-*

८. भावकुतूहल भाषाटीका-टीकाकार पं०रामोत्साह मिश्र। *मूल्यः६०)-*

९. मुहूर्त चिन्तामणि भाषा-टीका-पं.श्री गौरी नाथ पाठक, *मूल्यः ५०)-*

१०.सामुद्रिक सुधा-लेखक-श्री हरिदत्त शर्मा एम.ए.बी.एड.। *मूल्यः १००)-*

११.लघुसंग्रह भाषाटीका- टीकाकार पं०गणेशदत्त पाठक। *मूल्यः५०)-*

१२. लग्नचन्द्रिका भाषाटीका-टीकाकार-पं०कैलाशपति मिश्र। *मूल्यः ५०)-*

१३. ग्रहफल दर्पण भाषाटीका- टीकाकार-श्रीवासुदेव गुप्त। *मूल्यः ३०)-*

१४. श्रीमद्भागवत रहस्य-लेखक-पूज्यपाद-श्री रामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज। जिसे प्रत्येक परिवार में रहना परमावश्यक है। *मूल्य २००)-*

मुद्रक - सावित्री प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी।